आई एस एस एन : 0972-169X
पंजीयन क्रमांक 70269/98 के अंतर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल : 11360/2002

विज्ञान प्रसार की मासिक पत्रिका

ड्रीम 2047

सितम्बर 2002 खण्ड 4 अंक 12

विज्ञान प्रसार समाचार

जम्मू व कश्मीर में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी लोकप्रियकरण

विज्ञान प्रसार ने जिला कल्याण सोसाइटी (एसडब्ल्यूएस) के साथ मिलकर खानबल, अनंतनाग, (जम्मू व कश्मीर) में दो दिवसीय विपनेट कार्यशाला का आयोजन किया। एसडब्ल्यूएस उस क्षेत्र के छात्रों एवं शिक्षकों के बीच सक्रिय एक गैर–सरकारी संगठन है। यह कार्यशाला 24 और 25 अगस्त, 2002 को आयोजित की गयी जिसमें छात्रों एवं शिक्षकों से जबर्दस्त प्रतिक्रिया हासिल हुई। प्रारंभ में यह आशा व्यक्त की गयी थी कि विज्ञान प्रसार नेटवर्क (विपनेट) के सिर्फ 70 वर्तमान एवं भावी सदस्य ही इस कार्यशाला में उपस्थित रहेंगे, लेकिन कार्यशाला के बारे में प्रच्छन्न उत्साह की वजह से प्रतिभागियों की संख्या आश्चर्यजनक रूप से 115 से अधिक हो गयी।

कार्यशाला के सहभागी

कार्यशाला का आयोजन खानबल स्थित गवर्नमेंट ब्वायज़ हायर सेकेंडरी स्कूल (जीबीएचएसएस) में किया गया, जिसमें विज्ञान प्रसार की ओर से डॉ. टी.वी. वेंकटेश्वरन (एसएसओ) और श्री हरविन्दर सिंह शेरगिल (फेलो) ने भाग लिया। स्थानीय स्कूल की प्रधानाध्यापिका सुश्री हाबला कौसर ने परंपरागत रूप से शम्मा (दीप) जलाकर कार्यशाला का उद्घाटन किया, और शिक्षकों एवं युवा छात्रों से घाटी की प्राकृतिक सुंदरता और प्रकृति को बचाने के लिए मजबूत कदम उठाने का आग्रह भी किया। उन्होंने लाभ के लिए प्राकृतिक संसाधनों के बेलगाम शोषण के विरुद्ध चेतावनी भी दी। स्वागत भाषण श्री शबीर अहमद शबीर (सचिव, एसडब्ल्यूएस) ने दिया तथा श्री हरविन्दर सिंह शेरगिल ने विज्ञान प्रसार के उद्देश्य एवं कार्यक्रमों का विश्लेषण किया। तकनीकी सत्र के दौरान डॉ. टी.वी. वेंकटेश्वरन ने इस बात पर प्रकाश डाला कि प्रदर्शन और साधारण प्रयोगों, जिन पर नहीं के बराबर लागत आती है, द्वारा कैसे कोई मौलिक वैज्ञानिक तथ्यों को सम्प्रेषित कर सकता है। कॉलेज लेक्चरर प्रो. रफीक अली ने एक प्रदर्शन किया तथा जल प्रदूषण विषय पर बातचीत की। स्थानीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अधिकारियों ने भी पर्यावरण को हरा भरा एवं स्वच्छ बनाने में अपने द्वारा किये गये प्रयासों पर प्रकाश डाला तथा कश्मीर को एक हरी–भरी घाटी बनाये रखने में अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए छात्रों का आह्वान किया। श्री शरीर अहमद भट, शिक्षक, सीनियर सेकेंडरी स्कूल और श्री वकील अली, शिक्षक ने भी तकनीकी सत्रों का संचालन किया।

स्थानीय शिक्षण एवं शैक्षिक समुदाय से मिले उत्साही प्रत्युत्तर से ऊर्जा प्राप्त करके स्थानीय मेजबान संगठन एसडब्ल्यूएस एक कार्ययोजना लेकर आया। इस सोसाइटी ने उस क्षेत्र के करीब 30 विद्यालयों में विज्ञान मेलों के संचालन का निर्णय लिया तथा गतिविधि आधारित विज्ञान शिक्षा की भावी क्षमता का प्रदर्शन भी किया। जम्मू व कश्मीर में बहुत से विपनेट क्लबों की स्थापना भी की जा रही है।

इस अंक में

संपादकीय
- मेरी क्यूरी
- तीखा मसाला
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां
- नेहरू तारामंडल और विज्ञान शिक्षा
- डॉ. एस.जेड. कासिम के साथ भेंटवार्ता
- गोपाल चन्द्र भट्टाचार्य
दिल्ली पुस्तक मेला (24 अगस्त से 1 सितम्बर, 2002) में विज्ञान प्रसार ने भी भाग लिया। विज्ञान प्रसार स्टाल का एक दृश्य

...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक...

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से रैक्मो प्रेस प्रा. लि., सी–59, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस–I, नई दिल्ली–110 020 द्वारा मुद्रित
सम्पादक : डॉ. विनय बी. काम्बले

बात नहीं, काम जरूरी

1992 में ब्राजील के रियो डी जेनेरो शहर में पर्यावरण व विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन अर्थात् ''पृथ्वी सम्मेलन'' के लिए 150 से अधिक देशों के प्रतिनिधि एक साथ एकत्रित हुए थे। उन्होंने शैवाल से लेकर हाथी तक सम्पूर्ण प्रकृति की रक्षा का संकल्प किया था। वे इस पर भी सहमत हुए थे कि भूमंडलीय तापन अर्थात् ग्लोबल वार्मिंग के खतरनाक स्तर तक पहुंचने के पहले ही पृथ्वी के वातावरण के संतुलन को अतिशीघ्र सुरक्षित करने की आवश्यकता है। रियो में 'एजेन्डा 21' भी अस्तित्व में आया। यह वास्तव में परिवर्तन संबंधी एक ब्ल्यूप्रिंट है – जिसमें जैव–विविधता एवं जलवायु (मौसम) परिवर्तन पर वैधानिक रूप से बाध्यकारी उपसंधि, जंगलों के उपयोग एवं संरक्षण से संबंधित सिद्धांतों का एक ढांचा, तथा घोषणाओं की एक श्रृंखला शामिल है। वे विश्व को ''परम्परागत'' विकास के स्व–विध्वंसात्मक रास्ते से दूर ले जाने की प्रतिबद्धता स्थापित करते हैं, तथा पर्यावरण एवं विकास के बीच की महत्वपूर्ण कड़ियों को जोड़ते हैं। यहीं 'स्थायी विकास' अर्थात् सस्टेनेबल डेवलपमेंट की अवधारणा अस्तित्व में आयी, जो विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय एजेन्डा को निर्देशित करती रही है। इसके अलावा, इसने पर्यावरण से संबंधित मुद्दों पर सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों के बीच सहयोग की सुविधा भी प्रदान की है।

यह सही है कि रियो के बाद पिछले एक दशक से अधिक समय में काफी परिवर्तन आया है। लेकिन, अधिकांश चीजें यथावत् ही हैं। रियो पृथ्वी सम्मेलन में यह सिफारिश की गयी थी कि औद्योगिक देश वातावरण में एकत्रित कार्बन डाइऑक्साइड जैसी गैसों–जिनको ग्रीनहाउस गैसें भी कहते हैं – की वृद्धि कम करने के लिए, बल्कि समाप्त करने के लिए अपनी जीवन शैली और अपने उपभोग पैटर्न को बदलेंगे। हम जानते हैं कि ग्रीनहाउस गैसें वैश्विक रूप से वातावरण के तापमान को बढ़ाती हैं। अवश्य यह उत्साहजनक है कि बहुत–से देशों ने ग्रीनहाउस गैसों की कटौती के लिए निर्धारित लक्ष्य को पहले ही प्राप्त कर लिया है। हालांकि कुछ विकसित देशों के इंकार कर देने के कारण इन कदमों की प्रभावशीलता कम हो जाती है। भूमंडलीय तापन की बढ़ोतरी में विश्व के दूसरे देशों की अपेक्षा विकसित देशों का योगदान काफी अधिक है। वास्तव में, संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा किया गया कार्बन उत्सर्जन 1990 के स्तर से 16 प्रतिशत अधिक है, जो उसे विश्व का सबसे बड़ा प्रदूषण फैलाने वाला देश बनाता है। 1990 से विश्व के कुल जंगलों का 2.4 प्रतिशत हिस्सा नष्ट हो गया है, अर्थात् प्रति वर्ष लगभग 90,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का जंगल नष्ट हो रहा है। अब विश्व की 40 प्रतिशत आबादी दैनिक आवश्यकता के लिए स्वच्छ जल की गंभीर कमी झेल रही है। विश्व की करीब दो–तिहाई कृषि भूमि मिट्टी अपकर्षण की समस्या से जूझ रही है। पौधों और प्राणियों की सैकड़ों प्रजातियां विलुप्त हो गयी हैं। इसके अलावा गत दशक में इस ग्रह पर आबादी 80 करोड से बढ़ गयी है, जिससे विश्व की जनसंख्या 1950 के 2.5 अरब से बढ़कर 2000 में 6 अरब हो गयी है।

इसी पृष्ठभूमि में हाल ही में सम्पन्न स्थायी विकास पर विश्व सम्मेलन का आयोजन जोहांसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में हुआ। इसमें विश्व के 20,000 से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया, जिसमें करीब 100 देशों के राष्ट्राध्यक्ष, अग्रणी व्यवसायी, लगभग 700 कम्पनियों के प्रतिनिधि तथा विश्व भर के कई गैर–सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि शामिल थे। इस सम्मेलन का उद्देश्य रियो सम्मेलन के बाद की गयी प्रगति की जांच करना तथा जैव सुरक्षा एवं आनुवंशिक रूपांतरण द्वारा विकसित की गयी फसलों का प्रभाव, खतरनाक अपशिष्टों का नियमन एवं नियंत्रण, आजीविका एवं गरीबी के महत्वपूर्ण मुद्दे और प्राकृतिक पर्यावरण से उनका संबंध जैसे मुद्दों पर विचार–विमर्श करना था। इसके साथ ही सरकारों द्वारा पर्यावरणीय मुद्दों को नीतियों में रूपांतरित करने तथा स्थायी विकास के लिए उनके कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने पर भी सम्मेलन में बातचीत की गयी। हालांकि, प्रजातियों की विलुप्ति, संक्रामक रोगों, व्यापार सब्सिडी, स्वच्छ ऊर्जा जैसे अधिक महत्वपूर्ण मुद्दों पर कोई निर्णय नहीं लिया गया। इन मुद्दों के समाधान के लिए कोई लक्ष्य भी निर्धारित नहीं किया गया। वस्तुतः आंदोलनकर्ताओं ने जोहांसबर्ग छोड़ते समय अपने आप को विश्व के नेताओं द्वारा छला हुआ महसूस किया। उन्होंने कहा कि नेताओं ने ''गरीबों को रोटी का टुकड़ा थमाने का काम किया है। जब धन देने, समय सारिणी बनाने और लक्ष्य निर्धारित करने का समय आता है, वे पूरे विश्व को नीचा दिखा देते हैं।'' जैव–विविधता और वातावरण संबंधी मुद्दों की पूरी तरह से उपेक्षा की गयी, इसीलिए पर्यावरणविद् भी नाखुश दिखायी पड़े।

हमें महसूस करना चाहिए कि पर्यावरण जनता है, पर्यावरण व्यक्ति है, और अंततः हम ही पर्यावरण हैं। हमसे बाहर कुछ नहीं है। यह वैसा ही हमारा एक हिस्सा है, जैसा कि हम पर्यावरण का हिस्सा हैं। तो फिर क्या अस्थायी विकास को बनाये रखने में सिर्फ सरकार और निहित स्वार्थ रखने वाले लोगों पर आरोप लगाना उचित है? हम भी तो इस आरोप से मुक्त नहीं हैं। हमारे संविधान के तहत पर्यावरण की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का मूलभूत कर्तव्य है। हम विकसित देशों में हो रहे अपव्ययपूर्ण उपभोग की शिकायत करते हैं, लेकिन हम यह महसूस नहीं कर पाते कि हमारे यहां भी लोगों के कुछ वर्ग हैं जो अन्य लोगों की तुलना में काफी अधिक उपभोग करते हैं। अनुशासित या संयमी जीवन तो अब बीते दिनों की बात हो गयी है। यह कितना दुखद है! ऐसा इस देश में हो रहा है जहां महात्मा गांधी रहते थे और जिन्होंने आवश्यकता एवं लोभ के बीच अवस्थित अंतर की व्याख्या की थी। उन्होंने स्थायी विकास के लिए मंत्र दिया जब उन्होंने कहा कि ''पृथ्वी के पास सभी मनुष्यों की जरूरतों को पूरा करने के लिए तो बहुत कुछ है, लेकिन उसके पास सभी मनुष्यों की लालच को पूरा करने के लिए कुछ भी नहीं है।'' वस्तुतः व्यावहारिक रूप से कोई व्यक्ति अपने आप तो बहुत अल्प मात्रा में ही कार्य कर सकता है, लेकिन नैतिक रूप से वह काफी कुछ कर सकता है। वृक्षों को बचाने के लिए सुन्दरलाल बहुगुणा और उनके अनुयायियों द्वारा प्रारंभ किए गए 'चिपको आंदोलन' को याद कीजिए। या फिर अण्णा हजारे और राजेन्द्र सिंह के प्रयासों को याद कीजिए जिसकी वजह से जलसंभरण प्रबंधन कार्यक्रमों द्वारा क्रमशः महाराष्ट्र और राजस्थान की सूखी धरती को हरा–भरा किया जा सका। जब अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति पशुओं के अधिकार का समर्थन करते हैं तब पशुओं से बने उत्पाद अलोकप्रिय हो जाते हैं। वस्तुतः 'हरी चेतना' को अपने अंदर विकसित करना होगा, और उसका विस्तार वैयक्तिक स्तर से समुदायों, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक करना होगा। जब वैयक्तिक आवाजें समुदाय की आवाजों में बदलेंगी, तब कोई भी शक्ति उनकी उपेक्षा नहीं कर सकेगी।

इंदिरा गांधी ने एक बार कहा था कि गरीबी सबसे बड़ी प्रदूषक है। उनका आशय यह था कि पर्यावरण के लिए हम वह सब करें जो कर सकते हैं, लेकिन यदि गरीबी की समस्या की ओर ध्यान न दिया गया तो मानवीय दु:ख – बाकी सभी चीजों पर भारी पड़ेगा। हम लोगों को ऐसे मुद्दों से कैसे निपटना चाहिए? आर. राजामणी, पूर्व सचिव, पर्यावरण और वन मंत्रालय के अनुसार, महिला सशक्तिकरण और गरीबी उन्मूलन संबंधी कार्यक्रमों को काफी उत्साह के साथ कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। इससे उनको बिना प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट किये अपने जीवन स्तर को सुधारने में सहायता मिलेगी। स्वच्छ प्रौद्योगिकियों के विकास पर भी बल दिया जाना चाहिए। उद्यमियों एवं उद्योगपतियों को ऐसी प्रौद्योगिकियों को अपनाने की जरूरत है जो अपेक्षाकृत कम प्रदूषणकारी हों। प्लास्टिक की गैर–जैव अवक्रमणीयता के बारे में जानकारी होने के बावजूद आखिर क्यों हम इतने व्यापक पैमाने पर इन थैलियों का इस्तेमाल कर रहे हैं, या, पुनःप्राप्य ऊर्जा स्रोतों का उपयोग नहीं कर पाते हैं? क्या यह कहना अधिक मात्रा में अपेक्षा करना है? जोहांसबर्ग में पृथ्वी सम्मेलन के दौरान 11 वर्षीय कनाडाई लड़के जस्टिन फ्रीडेन ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा कि, ''बहुत से वयस्क धन व सम्पति अर्जित करने में अधिकाधिक रुचि रखते हैं तथा उन गंभीर समस्याओं पर ध्यान नहीं देते हैं जो हमारे भविष्य को प्रभावित करती हैं। आप अपने बच्चों, अपनी भतीजियों, अपने भतीजों और यहां तक कि अपने पोते–पोतियों के बारे में सोचिए। आखिर किस प्रकार की दुनिया आप उनको देना चाहते हैं?'' स्थायी विकास हमारे बच्चों और उनके बच्चों के लिए है। हमें बातें नहीं, काम करने की आवश्यकता है।

❒ *विनय बी. काम्बले*

सम्पादक : विनय बी. काम्बले

पत्र व्यवहार के लिए पता : **विज्ञान प्रसार** सी–24कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016

दूरभाष : 6967532, फैक्स: 6965986
ई–मेल : vigyan@hub.nic.in
वेबसाइट : http:èèwww.vigyanprasar.com

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदायी नहीं है।

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं।

मेरी क्यूरी

नोबेल पुरस्कार विजेता पहली महिला

सुबोध महंती

> विज्ञान के क्षेत्र में हमारी रुचि मनुष्यों में नहीं, बल्कि विषयों में होनी चाहिए।
>
> **मेरी क्यूरी**
>
> मेरी क्यूरी के जीवन में अनोखी बातों की इतनी भरमार रही है कि लोग उनकी जीवन–कथा, एक दंत कथा के रूप में प्रस्तुत करना चाहेंगे। वह महिला थीं; उनका संबंध एक उत्पीड़ित देश से था; वह निर्धन थीं; और रूपवती भी थीं। एक आकर्षक पेशे के बुलावे पर वह पढ़ने के लिए अपनी मातृभूमि पोलैंड से पेरिस चली आईं, जहां उन्होंने सालों तक गरीबी और एकाकीपन का जीवन बिताया। वहीं पर उनकी मुलाकात एक ऐसे व्यक्ति से हुई, जो उन्हीं के समान प्रतिभाशाली था। उन्होंने उस व्यक्ति से शादी कर ली और उनका जीवन अतुलनीय खुशियों से भर उठा। बेहद हताश करने वाली उबाऊ कोशिशों के जरिए उन्होंने एक जादुई तत्व, रेडियम की खोज की। इस खोज ने न केवल एक नए विज्ञान और एक नए दर्शन को जन्म दिया, बल्कि मानव समाज को एक घातक बीमारी के इलाज का साधन भी मुहैया किया।
>
> **मैडम क्यूरी बाई हर डाटर में ईव क्यूरी**
> **(विंसेंट शीआन द्वारा अनूदित)**

रेडियोधर्मिता शब्द का प्रयोग सबसे पहले मेरी क्यूरी ने किया था। रेडियम की खोज करके उन्होंने नाभिकीय भौतिकी और कैंसर चिकित्सा का मार्ग प्रशस्त किया। वह डाक्टरेट की डिग्री हासिल करने वाली यूरोप की पहली महिला थीं (सन् 1902)। नोबेल पुरस्कार हासिल करने वाली पहली महिला भी वही थीं। सन् 1903 में उन्हें रेडियोधर्मिता की खोज के लिए उनके पति पियरे क्यूरी (सन् 1859–1906) और हेनरी बेकरेल (सन् 1852–1908) के साथ भौतिकी का नोबेल पुरस्कार संयुक्त रूप से दिया गया। पेरिस के सोर्बोन विश्वविद्यालय में प्रवक्ता और प्रोफेसर के पद पर नियुक्त होने वाली पहली महिला मेरी क्यूरी ही थीं (सन् 1906)। दो बार नोबेल पुरस्कार पाने का सम्मान पहली बार मेरी क्यूरी को ही मिला। सन् 1911 में उन्हें शुद्ध रेडियम और रेडियम घटकों की खोज तथा उन्हें अलग करने की विधि का आविष्कार करने के लिए फिर नोबेल पुरस्कार मिला। मेरी क्यूरी को दूसरा नोबेल पुरस्कार रसायन शास्त्र में दिया गया था। वह ऐसी पहली नोबेल पुरस्कार विजेता मां थीं, जिनकी बेटी को भी नोबेल पुरस्कार मिला।

मेरी क्यूरी

मेरी क्यूरी का मूल नाम मारिया स्क्लोदोवस्की था। उनका जन्म 7 नवंबर, 1867 को पोलैंड की राजधानी वारसा में हुआ। उनकी मां का नाम ब्रोनिस्लावा और पिता का नाम व्लादिस्लाव स्क्लोदोवस्की था। वह अपने माता–पिता की पांचवीं और अंतिम संतान थीं। मेरी क्यूरी के जन्म के समय पोलैंड स्वतंत्र देश नहीं था। वह आस्ट्रिया, प्रूसिया और रूस के बीच बंटा हुआ था। वारसा पोलैंड के रूस के नियंत्रण वाले हिस्से में था। रूस का तत्कालीन शासक ज़ार अलेक्ज़ेंडर द्वितीय पोलैंड के लोगों को उनकी संस्कृति और भाषा से अनजान रख कर पोल राष्ट्रवाद को मिटा डालना चाहता था। कहा जाता है कि जब सन् 1881 में क्रांतिकारी छात्रों ने ज़ार की हत्या कर दी तब मेरी और उनकी सबसे अच्छी दोस्त काज़िया ने कक्षा में रखी मेजों के इर्द–गिर्द नृत्य करके उत्सव मनाया।

मेरी के जन्म के बाद उनके परिवार के दुर्भाग्य के दिन आ गए। उनको जन्म देने के लिए उनकी मां को एक स्कूल की प्राध्यापिका के पद से इस्तीफा देना पड़ा। इस्तीफा देने के समय तक मेरी का परिवार वहीं पर रहता था। उसके बाद वे लोग रहने के लिए लड़कों के एक स्कूल पर चले गए। मेरी के पिता उस स्कूल में गणित और भौतिकी पढ़ाते थे। लेकिन उस स्कूल के रूसी पर्यवेक्षक ने मेरी के पिता को उनकी पोल–राष्ट्रवादी भावनाओं के कारण नौकरी से निकाल दिया। बाध्य होकर उन्हें एक के बाद एक निचले दर्जे के शैक्षणिक पदों पर काम करना पड़ा। मेरी की मां को तपेदिक हो गई। वह पांच साल तक बीमारी से जूझती रहीं। आखिरकार मई 1878 में महज 42 साल की उम्र में उनका निधन हो गया। उस समय मेरी की उम्र केवल दस साल थी। सन् 1873 में स्क्लोदोवस्की की नौकरी चली गई। उनके स्थान पर एक रूसी अध्यापक नियुक्त कर लिया गया। बिना सोचे–समझे एक गलत योजना में पैसा लगा देने के कारण उसी दौरान वह अपने जीवन भर की अधिकांश जमा–पूंजी भी गंवा बैठे। उस योजना को उनका साला बढ़ावा दे रहा था। परिवार की बचत का पैसा अपने गलत फैसले की वजह से गंवा देने के कारण स्क्लोदोवस्की खुद को कभी माफ नहीं कर सके। लेकिन उन्होंने अपने बच्चों को भावनात्मक सुरक्षा देने और बुद्धिमत्ता से उनका लालन–पालन करने में कोई कोर–कसर नहीं उठा रखी। इसलिए उनके बच्चे हमेशा उनका सम्मान करते रहे। वह अपने बच्चों को साहित्य की शास्त्रीय महत्व वाली कृतियां पढ़कर सुनाते थे। उन्होंने बच्चों को वैज्ञानिक उपकरण भी दिखाए। मेरी के पिता इन उपकरणों का उपयोग स्कूल में भौतिकी पढ़ाने के लिए किया करते थे। लेकिन रूसियों ने प्रयोगशाला संबंधी गतिविधियों को पोलैंड के शैक्षिक पाठ्यक्रम से हटा दिया था। इसलिए वे स्कूली उपकरण स्क्लोदोवस्की के घर में रखे हुए थे। मेरी क्यूरी ने लिखा है, ''स्कूल में गणित और भौतिकी जैसे विज्ञानों को जिस सीमा तक महत्व दिया जाता है, उतना मैंने आसानी से सीख लिया। इसमें मुझे अपने विज्ञान–प्रेमी पिता से तत्काल मदद मिली..... दुख की बात यह थी कि उनके पास कोई प्रयोगशाला नहीं थी और वह प्रयोग नहीं कर पाते थे।''

स्कूली पढ़ाई में मेरी क्यूरी बहुत अच्छी थीं। सन् 1883 में उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसमें उन्हें स्वर्ण पदक मिला। लेकिन उनकी खुशी इस नाते धूमिल पड़ गई कि उन्हें रूस अधिकृत पोलैंड के उच्च शिक्षा अधिकारी से हाथ मिलाना पड़ा। वह भी एक रूसी ही था। अपनी स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद वह अवसाद की शिकार हो गईं। उनके पिता ने उन्हें सुझाव दिया कि वह अपना एक साल का समय देश में ही रिश्तेदारों के साथ गुजारें। मेरी को अपने जीवन में चिंतामुक्त जीवन बिताने के लिए वहीं एक साल मिला।

मेरी स्कूली दिनों में काफी अच्छी छात्रा थीं, लेकिन उनमें कोई ऐसी चौंका देने वाली विशेषता नहीं दिखी थी जिससे यह संकेत मिलता कि वह भविष्य में विश्व की सबसे प्रसिद्ध महिला वैज्ञानिक बनेंगी। मेरी की पुत्री ईव क्यूरी ने अपनी मां की अत्यंत प्रभावकारी आत्मकथा लिखी है। उसमें उन्होंने लिखा है, ''मैने मारिया स्क्लोदोवस्की के बचपन, किशोरावस्था, अध्ययन और खेलकूद के दिनों को दर्शाने की कोशिश की है। वह स्वस्थ, ईमानदार, संवेदनशील और हंसमुख थीं। उनका हृदय प्रेम–भरा था। उनके अध्यापकों के शब्दों में उनमें ''विशेष प्रतिभा'' थी। वह मेधावी छात्रा थीं। लेकिन कुल मिलाकर उनमें हतप्रभ कर देने वाली ऐसी कोई विशेषता नहीं थी, जो उन्हें साथ में पले–बढ़े बच्चों से अलग करती।''

मेरी में अध्ययन की गहरी चाह और ज्ञान पाने की प्रबल लालसा थी।

लेकिन उन दिनों के पोलैंड में मेरी को अपने जैसी सोच वाली महिला के लिए उच्च शिक्षा की कोई संभावना नहीं दिखाई दे रही थी। इसलिए उन्होंने अपनी बहन ब्रोन्या के साथ ''फ्लोटिंग युनिवर्सिटी'' (तैरता विश्वविद्यालय) में जाना शुरू कर दिया। ''तैरता विश्वविद्यालय'' शब्द का प्रयोग इसलिए किया जाता था कि ये स्कूल गैरकानूनी ढंग से रात के अंधेरे में चलते थे और रूसी अधिकारियों की निगाहों से बचने के लिए उनकी जगह बदलती रहती थी। इसकी स्थापना कुछ ऐसे छात्रों ने की थी जो मानते थे कि आधारभूत शैक्षिक आंदोलन का स्वाभाविक परिणाम पोलैंड की आजादी के रूप में सामने आएगा। इस बारे में मेरी क्यूरी ने लिखा है, ''पोलैंड के नौजवानों के इन समूहों का विश्वास था कि देश के बौद्धिक और नैतिक विकास के लिए किए जाने वाले अथक प्रयासों में ही उनके देश की आशा निहित है...... हमने आपस में तय किया कि जिसे जो विषय सबसे अच्छी तरह आता है, उसे वह शाम को अन्य लोगों को पढ़ाया करेगा।''

पियरे क्यूरी

स्वाभाविक सी बात थी कि ''तैरते विश्वविद्यालय'' में दी जाने वाली शिक्षा, महिलाओं का दाखिला देने वाले किसी भी प्रमुख यूरोपीय विश्वविद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा की बराबरी नहीं कर सकती थी। लेकिन मेरी को इतना लाभ जरूर हुआ कि वह प्रगतिशील विचारधारा और विज्ञान के क्षेत्र में हुए नए विकासों से परिचित हो गई। मेरी और उनकी बहन ने उम्मीद संजो रखी थी कि उन्हें पेरिस जाकर सोर्बोन विश्वविद्यालय में पढ़ने का अवसर मिलेगा, पर उनके पिता उन्हें उच्च शिक्षा के लिए पेरिस भेजने की स्थिति में नहीं थे। ब्रोन्या प्राइवेट ट्यूशन करके कुछ पैसा कमाती थी। मेरी ने भी ऐसा करने की कोशिश की, पर उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। कुछ ही दिनों में दोनों बहनों को अहसास हो गया कि वे अकेले दम पर पेरिस जाने के लिए पर्याप्त पैसा नहीं जुटा सकतीं। इसलिए उन्होंने फैसला किया कि उन दोनों के संसाधनों की मदद से पहले उनमें से कोई एक पेरिस जाएंगी। लेकिन दिक्कत यह थी कि इस बात का फैसला कैसे हो कि पहले कौन जाएगा? मेरी ने अपनी बहन से पहले जाने के लिए कहा। इस पर ब्रोन्या ने उत्तर दिया – ''पहले मुझे क्यों जाना चाहिए? इसका उल्टा क्यों न हो? तुम इतनी प्रतिभाशाली हो बल्कि मुझसे भी अधिक प्रतिभाशाली हो! तुम्हें बहुत जल्दी सफलता मिलेगी। मुझे क्यों जाना चाहिए?''

मेरी क्यूरी

लेकिन मेरी के अपने तर्क थे, और वे अधिक व्यावहारिक थे। उन्होंने कहा, ''ओ ब्रान्या, मूर्ख मत बनो। तुम बीस की हो चली हो, और मेरी उम्र केवल सत्रह साल है। तुम सदियों से इंतजार कर रही हो, और मेरे पास काफी समय है। पिता जी भी ऐसा ही सोचते हैं, और यह स्वाभाविक भी है कि पहले बड़ा जाय। काम मिल जाने पर तुम मुझे सोने से ढक सकती हो – दरअसल, मुझे इस बात का भरोसा भी है। आखिरकार हम एक बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय ले रहे हैं, एक ऐसा निर्णय, जो कारगर साबित होगा....''

पैसा कमाने के लिए मेरी ने घरेलू शिक्षिका बनने का फैसला लिया। शिक्षिका के रूप में उनका पहला अनुभव सुखद नहीं रहा। अपने अनुभव के बारे में उन्होंने अपनी रिश्ते की एक बहन टेनरिटा माइकेलोवस्का को लिखा, ''अलग होने के बाद से ही मैं कैदियों जैसा जीवन जी रही हूं। तुम्हें मालूम ही है कि बी... बंधुओं के वकील परिवार में काम मिल गया है। मैं ऐसे नर्क में अपने दुश्मन को भी नहीं देखना चाहूंगी। यह परिवार उन धनाड्य परिवारों में शामिल है, जहां सामूहिक जमावड़ों में चिमनी की सफाई करने वालों के अंदाज में फ्रांसीसी बोली जाती है – जहां लोगों ने छह–छह महीने से अपने बिलों का भुगतान नहीं किया है, जहां एक तरफ तो लैंपों में जलने वाले तेल की बचत की जाती है, और दूसरी तरफ पैसा खिड़कियों से बाहर फेंका जाता है। उनके पांच नौकर हैं। परिवार के लोग स्वयं को उदार दर्शाने की कोशिश करते हैं, लेकिन वास्तव में वे बहुत बड़े मूर्ख हैं। और उनके बारे में आखिरी बात यह है कि वे बातें तो बड़ी मीठी आवाज में करते हैं, पर उनमें परनिंदा और चुगलखोरी भरी रहती है.... और परनिंदा भी ऐसी, जो दूसरों को बिल्कुल नंगा करके रख दे.... यहां आकर मैं मनुष्य जाति को अधिक अच्छी तरह समझने लगी हूं। ***मैंने जान लिया है कि उपन्यासों में वर्णित चरित्रों का वास्तव में अस्तित्व होता है, और व्यक्ति को ऐसे लोगों के संपर्क में नहीं रहना चाहिए, जिनका धन के प्रभाव से नैतिक पतन हो चुका हो*** (मूल कृति में ये पंक्तियां रेखांकित नहीं हैं)।

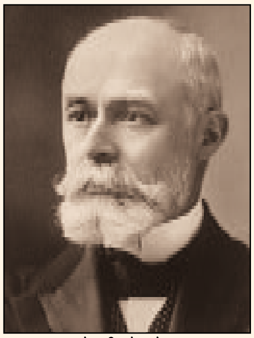

हेनरी बेकरेल

सन् 1886 में उन्हें वारसा से 100 कि.मी. दूर एक गांव में घरेलू शिक्षिका की नौकरी मिल गई। उन्हें पूरे साल के वेतन के रूप में 500 रूबल मिले पर 3 फरवरी, 1886 को हेनेरिटा को लिखे गए उनके पत्र से लगता है कि उन्हें यह नौकरी पसंद आ गई थी। उन्होंने लिखा था : ''मैं एक महीने से मिस्टर और मिसेज़ ज़ेड के यहां हूं। इस बीच मुझे खुद को नए काम के मुताबिक ढालने का मौका मिल गया है। अब तक सब कुछ ठीक–ठाक रहा है। जेड परिवार के लोग काफी भले हैं। मैंने उनकी बड़ी लड़की ब्रोंका की मदद से दोस्त बना लिए हैं। इससे मेरे जीवन में प्रसन्नता बढ़ी है। जहां तक मेरे शिष्य एंड्जिया का सवाल है, तो वह जल्द ही दस साल का होने वाला है। वैसे तो वह एक अज्ञाकारी शिष्य है लेकिन काफी अव्यवस्थित प्रकृति का है, और लाड़–प्यार से बिगड़ गया है। पर कोई पूर्णता की अपेक्षा नहीं कर सकता....''

उस परिवार से मेरी की इस हद तक दोस्ती हो गई कि जब उन्होंने कुछ किसान बच्चों को पोल भाषा लिखना–पढ़ना सिखाना चाहा, तो परिवार के लोगों ने उनकी मदद की। उन दिनों पोलैंड में इस तरह की गतिविधियों पर सख्त पाबंदी थी। वहां काम करने के दौरान मेरी को परिवार के सबसे बड़े लड़के से प्यार हो गया। वह वारसा विश्वविद्यालय में गणित का छात्र था। उन दोनों ने शादी करने का फैसला लिया। लेकिन मेरी को नौकरी देने वालों, यानी लड़के के माता–पिता ने अनुमति देने से साफ इनकार कर दिया। घटनाक्रम के ऐसे मोड़ से मेरी ने खुद को अपमानित अनुभव किया, पर अनुबंध की अवधि समाप्त होने तक वह वहां रुकी रहीं। उनके लिए भावना से बड़ा स्थान कर्तव्य का था। वह जानती थीं कि उन्हें पेरिस में रह रही अपनी बहन के पास पैसा भेजना होगा।

सन् 1889 में मेरी वारसा लौट आईं। उन्हें एक धनी उद्योगपति के घर में नौकरी मिल गई। इस काम को खत्म करने के बाद वह अपने पिता के साथ रहने लगीं। उन्होंने तैरता विश्वविद्यालय में फिर दाखिला ले लिया। इस बार उन्हें किसी प्रयोगशाला में प्रवेश करने का पहला मौका मिला। 'द म्यूजियम ऑफ इंडस्ट्री एंड एग्रीकल्चर' नाम का यह संस्थान युवा पोलों को विज्ञान की शिक्षा देता था। उन दिनों मेरी के रिश्ते के भाई जोसेफ बोगुस्की उस संस्थान के निदेशक थे। संस्थान का वैसा नाम रूसी अधिकारियों को गुमराह करने के लिए रखा गया था। संस्थान को संग्रहालय समझकर रूसी अधिकारी उस पर संदेह नहीं करते थे। वहां के अपने अनुभवों के बारे में मेरी ने लिखा है, ''मुझे इस प्रयोगशाला में काम करने के लिए बहुत कम समय मिलता था। मैं वहां

रात के भोजन के बाद, या रविवार को जा पाती थी, और वहां सब कुछ मुझे स्वयं ही करना होता था। मैंने भौतिकी और रसायन शास्त्र के प्रबंधों में वर्णित कई प्रयोगों को दुहराने की कोशिश की, और कई बार उनके अप्रत्याशित परिणाम मिले। कभी–कभी कोई छोटी सी अप्रत्याशित सफलता मुझे उत्साहित कर जाती थी, और कई बार अनुभवहीनता के कारण होने वाली दुर्घटनाओं और मिलने वाली असफलताओं के कारण मैं निराशा में डूब जाती थी। लेकिन कुल मिलाकर यह कहना चाहिए कि मैंने अपनी ओर से कीमत चुका कर सीखा। लेकिन वह सफलता न तो आसान थी, और न ही जल्दी मिली थी। इन्हीं शुरुआती परीक्षणों के दौरान प्रायोगिक अनुसंधान में मेरी रुचि बढ़ी।''

आखिरकार वह घड़ी आ गई जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थीं। नवंबर 1891 में वह पेरिस रवाना हुई। उस समय उनकी उम्र 24 साल थी। रेलगाड़ी की सबसे सस्ती श्रेणी के डिब्बे में तीन दिन की यात्रा कर वह पेरिस पहुंची। वहां उन्होंने सोर्बोन विश्वविद्यालय में अपना पंजीकरण कराया। उन्हें पढ़ाई में कड़ी मेहनत करनी पड़ी। स्कूल की पढ़ाई खत्म करने के बाद वह छह साल तक विद्यालयी शिक्षा से दूर रही थीं। इस बीच उन्होंने स्वाध्याय ही किया था। अतः उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान और स्कूली पाठ्यक्रम के बीच काफी बड़ा फासला था। एक अन्य कठिनाई यह थी कि मेरी को फ्रांसीसी भाषा का अच्छा ज्ञान था, पर उनकी भाषा सोर्बोन विश्वविद्यालय के उनके सह पाठियों और प्रोफेसरों द्वारा बोली जाने वाली तकनीकी फ्रांसीसी भाषा जैसी नहीं थी।

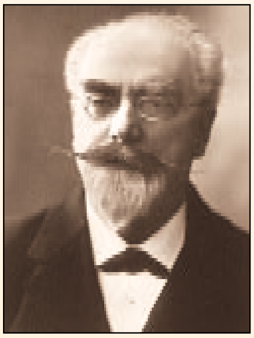

गेब्रिएल लिप्पमैन

पेरिस में मेरी सबसे पहले अपनी बहन ब्रोन्या के घर ठहरी। उनकी बहन ने एक अन्य पोल देश भक्त कासीमीर द्लुस्की से शादी कर ली थी। द्लुस्की से ब्रोन्या की मुलाकात एक मेडिकल स्कूल में हुई थी। मेरी विश्वविद्यालय से अपनी बहन के घर तक किराए की सवारियां ढोने वाली घोड़ा गाड़ी से आया जाया करती थीं। इसमें एक घंटे का समय लग जाता था। इस तरह उनका दो घंटे का महत्वपूर्ण समय बरबाद हो जाता था। इसके अलावा द्लुस्की के घर पर पोल लोगों का जमावड़ा हुआ करता था, और उनकी बातचीत का मेरी के काम से कोई संबंध नहीं होता था। युवा डाक्टर द्लुस्की को उसके मरीज रात–बिरात कभी भी बुला लेते थे। इससे दूसरे लोगों की नींद में खलल पड़ता था। जब घर में कोई मिलने–जुलने वाला नहीं होता था, तो द्लुस्की पियानो बजाने लगता था। मेरी के काम में इससे भी बाधा पहुंचती थी। इसलिए कुछ महीनों में ही मेरी विश्वविद्यालय के पास स्थित लैटिन क्वार्टर में चली गईं, जिसके आस पास कलाकार और छात्र रहा करते थे। उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। वहां उनके लिए कोई सुविधा नहीं थी।

इस संबंध में उनकी पुत्री ईव क्यूरी ने लिखा है, ''मेरी को जिन कमरों में रहना था, वे सभी समान रूप से असुविधाजनक और सस्ते थे। मेरी को सबसे पहले एक असुसज्जित मकान में रहना पड़ा। उसमें डाक्टर, छात्र और पास में ही तैनात सैनिक टुकड़ी के अफसर रहा करते थे। शांति की तलाश में उस लड़की ने बाद में एक मध्यम वर्गीय परिवार के मकान की छत पर नौकरों के कमरे जैसी अटारी किराए पर ले ली। 15–20 फ्रांक प्रति माह के किराए पर उसे एक छोटा सा कोना मिला जिसमें छत की ढ़लान से जुड़ा हुआ एक छेद ही रोशनी आने का जरिया था। आसमानी रोशनी के उस स्रोत से आकाश का एक छोटा सा हिस्सा दिखाई देता था। वहां न आग जलाने की व्यवस्था थी, न प्रकाश और न पानी था...... न ही कोई सेवक था; किसी से दिन में एक घंटे सफाई कराने पर भी बजट का बोझ खर्च कर पाने की क्षमता से अधिक हो जाता। लेकिन मेरी के आने–जाने का खर्च घट गया। मेरी हर मौसम में सोर्बोन विश्वविद्यालय पैदल ही जातीं। वह कोयला भी कम से कम खर्च करतीं। पूरी सर्दी के मौसम में केवल एक, या दो बोरी कोयला खर्च किया जाता था। कोयला वह कोने पर स्थित दुकान से लाती थीं और फिर उसे टोकरी में भर–भर कर हर मंजिल पर रुककर दम लेते हुए लगभग खड़े चढ़ाव वाली सीढ़ियों पर चढ़कर छठीं मंजिल तक पहुंचाती थीं। वहां प्रकाश नहीं के बराबर था। रात होते ही उस छात्रा को सेंट–जेनेविएव पुस्तकालय में शरण लेनी पड़ती थी, भाग्य से मिला वह शरणगृह गैस जलाने से गर्म रहता था। हाथों में अपना सिर थामे हुए एक बड़ी षट्कोणीय मेज पर बैठ कर वह गरीब पोल लड़की रात दस बजे पुस्तकालय बंद होने के समय तक काम करती रहती थी। उसके बाद सुबह के दो बजे तक कमरे में पर्याप्त प्रकाश रखने के लिए काफी तेल की आवश्यकता होती थी। मेरी किताबों को आंखों के थक कर लाल हो जाने पर ही छोड़ती थी, और फिर खुद को बिस्तर पर डाल देती थी।'' मेरी अपने सपनों से अभिभूत थी। गरीबी से तंग रहने के बावजूद उसे गर्व था कि वह परदेश में अकेली, बिना किसी सहारे के रह रही है। वह कुछ हासिल करना चाहती थी, और उसे पूरा आत्मविश्वास था कि वह एक दिन अपने लक्ष्य को हासिल करेगी। उन्हीं दिनों अपने भाई को भेजे गए एक पत्र में उन्होंने लिखा, ''मेरे लिए अपने जीवन के बारे में विस्तार से लिखना कठिन है। इसमें काफी एकरसता है, बल्कि यह कहना चाहिए कि यह अरुचिकर है, फिर भी मैं जड़ता अनुभव नहीं करती। मुझे केवल यह अफसोस है कि दिन काफी छोटे हैं, और वे बहुत जल्दी बीत जाते हैं। किए जा चुके काम पर कोई ध्यान नहीं देता, लोग यही देखते हैं कि कितना काम बाकी रह गया है और अगर कोई काम को नापसंद करता है, तो आप हतोत्साहित होते हैं।

विलहेम कानरेड रोंटजेन

मैं चाहती हूं कि तुम डाक्टरेट की थिसीस पास करो.... लगता है, हममें से किसी के लिए जीवन आसान नहीं है, लेकिन इससे क्या, हमें निरंतरता बनाए रखनी चाहिए, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि खुद पर विश्वास रखना चाहिए। हमें विश्वास होना चाहिए कि हम किसी विशेष लक्ष्य के लिए अर्पित हैं और वह लक्ष्य किसी भी कीमत पर हासिल किया जाना चाहिए। ऐसा भी हो सकता है कि ठीक उस छण सब कुछ काफी अच्छा हो जाए, जब हमें ऐसा होने की आशा न के बराबर हो.....''

मिस्टर मैलोनी, आइरिन, मेरी, ईव क्यूरी अमेरिका में

बेहद कठिनाइयों के बावजूद मेरी ने सन् 1893 में न केवल भौतिकी की मास्टर डिग्री हासिल की, बल्कि प्रथम भी आईं। गर्मियों में जब वह वारसा गई तो उन्हें इस शानदार सफलता के लिए 600 रूबल की अलेक्जेंड्रोविच छात्रवृत्ति दी गई। वह छात्रवृत्ति विदेश जाने की इच्छा रखने वाले प्रतिभाशाली पोल छात्रों को दी जाती थी। इस छात्रवृत्ति की मदद से मेरी पेरिस लौटीं। एक साल की पढ़ाई के बाद सन् 1894 में उन्होंने गणित की मास्टर डिग्री की परीक्षा दी। इस बार वह द्वितीय आईं। पहली सवैतनिक नौकरी मिलते ही मेरी ने छात्रवृत्ति की 600 रूबल की राशि अलेक्जेंड्रोविच फाउंडेशन को वापस लौटा दी ताकि उस धन की सहायता से किसी अन्य युवा छात्र को भी वैसा ही अवसर मिल सके, जैसा उसे मिला था। सोर्बोन में मेरी को मार्सेल ब्रिलोउइन, पॉल पेनलेव, ग्रैब्रिएल लिपमैन और पॉल ऐपेल जैसे कुछ अति प्रसिद्ध भौतिकीविदों और गणितज्ञों का व्याख्यान सुनने को मिला।

गणित की डिग्री हासिल करने से पहले ही मेरी को सोसाइटी फॉर द

इनकरेजमेंट ऑफ नेशनल इंडस्ट्री ने विभिन्न प्रकार के इस्पातों की रासायनिक संरचना और उनके चुंबकीय गुणों के बीच के संबंधों का अध्ययन करने का दायित्व सौंपा। इस काम के लिए मेरी को एक प्रयोगशाला की आवश्यकता थी। पोल भौतिक विज्ञानी एम. कोवालस्की मेरी से परिचित थे। वह फ्रिबोर्ग विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। जिन दिनों मेरी प्रयोगशाला की तलाश में थीं, उन्हीं दिनों वह पेरिस की यात्रा पर आए हुए थे। उन्होंने मेरी को सलाह दी कि वह पियरे क्यूरी से मिलें। शायद वह उनकी कुछ मदद कर सकें। पियरे ने चुंबकीयता पर अग्रणी शोधकार्य किया था, और वह पेरिस के औद्योगिक भौतिकी और रसायन म्युनिसिपल स्कूल की प्रयोगशाला के प्रमुख थे। इस तरह मेरी और पियरे की मुलाकात हुई। एक ऐसी मुलाकात, जिसने न केवल उन दोनों के व्यक्तिगत जीवन, बल्कि विज्ञान की दिशा को भी बदल डाला। पियरे की मदद से मेरी को म्युनिसिपल स्कूल की प्रयोगशाला का उपयोग में न आने वाला स्थान मिल गया।

फ्रेडरिक विलहेम ओस्टवाल्ड

मेरी जब पियरे से मिलीं तो उनकी उम्र 35 साल थी, और वह मेरी से आठ साल बड़े थे। एक स्थापित वैज्ञानिक होते हुए भी वह फ्रांस के वैज्ञानिक समुदाय में घुले–मिले नहीं थे। वह एक स्वप्नदर्शी और आदर्शवादी व्यक्ति थे। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य स्वयं को विज्ञान के विकास के लिए समर्पित कर देना था। उन्हें मान्यता पाने की चिंता नहीं थी। भौतिकी के जिस म्युनिसिपल स्कूल के वह प्रमुख थे, उसमें इंजीनियरों को प्रशिक्षण दिया जाता था। पियरे का शोध कार्य मणिभों और विभिन्न तापमानों पर पिंडों के चुंबकीय गुणों से संबंधित था। अपने भाई के साथ मिल कर उन्होंने पिएज़ो–विद्युत की खोज की और यह दर्शाया कि जब क्वार्टज एवं कुछ अन्य मणिभों पर यांत्रिक दबाव डाला जाता है तो विद्युत–विभव में अंतर दिखाई देता है।

मेरी भी एक आदर्शवादी थीं, और पियरे की ही तरह एकनिष्ठ भाव से विज्ञान को बढ़ावा देना चाहती थीं। नतीजन पियरे और मेरी में बौद्धिक स्तर पर तत्काल निकटता हो गई अैर यह निकटता जल्दी ही गहन अनुभूतियों में बदल गई। शुरू में मेरी, फ्रांस में बसने का इरादा नहीं रखती थीं। पियरे ने जब उनसे पूछा कि क्या वह फ्रांस में स्थाई तौर पर बसने का इरादा रखती है, तो उन्होंने उत्तर दिया, ''कतई नहीं, अगर इन गर्मियों में मुझे अपनी एम.ए. की परीक्षा में सफलता मिलती है तो मैं वारसा वापस लौट जाऊंगी। मैं बसंत के मौसम में यहां वापस आना चाहूंगी, लेकिन मैं यह नहीं जानती कि इसके लिए साधन उपलब्ध होंगे, अथवा नहीं। बाद में मैं पौलेंड में अध्यापिका बनना चाहूंगी, मैं उपयोगी बनाना चाहूंगी। पोल लोगों को अपना देश छोड़ने का अधिकार नहीं है।'' गणित की परीक्षा में सफल होने के बाद मेरी छुट्टियों में वारसा चली गईं। वह दुबारा पेरिस लौट पाने के बारे में निश्चित नहीं थी।

पियरे उन्हें अक्सर पत्र लिखते रहते थे। उन्होंने अपने पत्रों में इस बारे में मजबूत तर्क दिए कि पेरिस छोड़ने का उनका इरादा भले ही नेक हो, पर ऐसा करके वह न केवल उन्हें (पियरे) खो देंगी, बल्कि विज्ञान के क्षेत्र में संभावनाओं से भरा कैरियर भी गंवा देंगी। एक पत्र में पियरे ने लिखा, ''हमने एक–दूसरे से वादा किया था.... किया था, या नहीं..... कि हम कम से कम एक–दूसरे के अच्छे दोस्त तो बने ही रहेंगे। ....बशर्ते अब तुम अपना इरादा न बदल दो, क्योंकि कोई भी वचन बाध्यकारी नहीं होता; ऐसी चीजों के बारे में मनमाने ढंग से आदेश नहीं दिया जा सकता।

ऐसा करना भी ठीक वैसे ही उचित होगा जैसे कि मेरे गले से यह बात नहीं उतर पाती कि हम दोनों अपना जीवन तुम्हारे देश भक्ति के सपनों और हमारे मानवतावादी तथा विज्ञान संबंधी सपनों से अभिभूत होकर एक–दूसरे के समीप जीवन बिताएं।

मेरे विचार से इनमें से अंतिम सपना ही उचित है। मेरा आशय यह है कि हममें समाज–व्यवस्था को बदलने की शक्ति नहीं है, और यदि ऐसा न भी हो तो किसी भी दिशा में सक्रिय होने पर हमें यह नहीं पता होगा कि करना क्या चाहिए? हम इस संबंध में आश्वस्त नहीं होंगे कि किसी अनिवार्य विकासक्रम को बाधित कर हम कहीं लाभ से अधिक हानि तो नहीं पहुंचा रहे हैं। दूसरी तरफ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम कुछ पाने की उम्मीद कर सकते हैं। यहां आधार ठोस है; हम कितनी भी छोटी खोज करें, वह अर्जित ज्ञान का हिस्सा होगा।''

मेरी वापस लौटीं और जुलाई 1895 में उन्होंने पियरे से शादी कर ली। पेरिस आकर उन्होंने शिक्षण–डिप्लोमा भी हासिल किया। अपने समूह में वह प्रथम आईं। भविष्य में नोबेल पुरस्कार पाने वाली उनकी पुत्री इरेने का जन्म सितंबर 1897 में हुआ।

पियरे ने स्कूल की प्रयोगशाला में मेरी को काम करने देने के लिए अधिकारियों को मना लिया। सन् 1897 में मेरी ने भौतिकी में डाक्टरेट करने का निश्चय किया। उन्होंने अपने शोध–प्रबंध के विषय का चुनाव कुछ वैज्ञानिकों द्वारा हाल ही में की गई खोजों से प्रभावित होकर किया। दिसंबर 1895 में विलहेल्म कारनेड रोंटजेन (सन् 1845–1923) ने एक ऐसी किरण की खोज की, जो ठोस लकड़ी, अथवा मांस से गुजर जाती थी और जीवित मनुष्य की हड्डियों का चित्र उतार सकती थी। भौतिकी के पहले नोबेल पुरस्कार विजेता रोंटजेन ने इन रहस्यमय किरणों का ज्ञान एक्स–किरण रखा। 'एक्स' का अर्थ होता है अज्ञात।

फ्रेडरिक हेनरी मोइसन

सन् 1896 में एंटोनी हेनरी बेकरेल ने दर्शाया कि अंधेरे में रखे यूरेनियम यौगिक भी फोटोग्राफी की प्लेटों को कुहांसी कर देने वाली किरणें उत्पन्न करते थे। यह खोज अकस्मात ही हुई थी। दरअसल बेकरेल यह देखने की कोशिश कर रहे थे कि क्या प्रतिदीप्ति और रोंटजेन द्वारा खोजे गए विकिरण में कोई संबंध है? शुरू में वैज्ञानिक समुदाय ने बेकरेल की इस कौतुहलकारी खोज की उपेक्षा की। मेरी ने अपने शोध–प्रबंध के लिए रहस्यमयी यूरेनियम किरणों का योजनाबद्ध ढंग से परीक्षण करने का निश्चय किया। विषय नया होने से मेरी को उस बारे में पूर्व–प्रकाशित लेखों की लंबी संदर्भ सूची को नहीं पढ़ना पड़ा। वह तत्काल प्रयोग शुरू करने की स्थिति में थीं। उन्हें एक विशेष सुविधा हासिल थी। उनके पास मंद विद्युत धारा को मापने वाला एक विद्युतमापी था। इस नए ढंग के विद्युतमापी का आविष्कार पियरे क्यूरी और उनके भाई जैक्युज ने किया था और वह पिएज़ो–विद्युत प्रभाव पर आधारित था। मेरी ने यूरेनियम किरणों से प्रभावित यौगिकों के विकिरण की तीव्रता निर्धारित करने का फैसला किया। इस कार्य के लिए नया उपकरण काफी उपयोगी था।

इस विषय पर काम करते हुए मेरी ने यह खोज की कि थोरियम भी यूरेनियम जैसी किरणें ही विकिरित करता है। इस तरह उन्होंने सिद्ध कर दिया कि यूरेनियम अकेला रेडियोधर्मी तत्व नहीं है। उन्होंने यह भी दर्शाया कि विकिरण की शक्ति उस यौगिक से निर्धारित नहीं होती, जिसका अध्ययन किया जाता है, बल्कि वह नमूने में उपस्थित यूरेनियम या थोरियम की मात्रा से निर्धारित होती है। यह एक आश्चर्यचकित करने वाला परिणाम था क्योंकि हम सभी जानते हैं कि एक ही तत्व के विभिन्न यौगिकों के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में काफी भिन्नता होती है। अपनी खोजों के आधार पर मेरी ने निष्कर्ष निकाला कि विकिरण क्षमता अणुओं के विन्यास, और किसी अन्य वस्तु तथा यूरेनियम की पारस्परिक क्रिया में नहीं, बल्कि स्वयं यूरेनियम की आंतरिक संरचना में निहित होती है। इसे एक पारमाणविक गुण–धर्म होना चाहिए। अवधारणात्मक दृष्टि से भौतिकी में यह उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान था। रेडियोधर्मिता एक पारमाणविक परिघटना है, इस तथ्य को रदरफोर्ड और उनके शिष्यों ने दर्शाया। उन खोजों के बाद मेरी ने थोरियम और यूरेनियम के प्राकृतिक अयस्कों का अध्ययन शुरू किया। उन्होंने देखा कि पिच ब्लैंड और चाल्कोसाइट नामक यूरेनियम के दो खनिज यूरेनियम से भी अधिक सक्रिय हैं। अत: उन्होंने यह परिकल्पना प्रस्तुत की कि इन अयस्कों में यूरेनियम से भी अत्यधिक सक्रिय कोई तत्व अल्प मात्रा में मौजूद है।

मेरी के शोध–कार्य से जन्मी नई संभावनाओं से पियरे इस सीमा तक आकर्षित हुए कि उन्होंने मणिभों और प्रकृति में व्याप्त समरूपता के बारे में किए

जा रहे अपने शोध–कार्य को छोड़ दिया और मेरी के शोध–कार्य में शामिल हो गए। उन्होंने पाया कि बिस्मथ और बेरिगम के टुकड़े सर्वाधिक रेडियो सक्रिय हैं। जून 1898 के अंत तक उन्होंने एक ऐसे तत्व को खोज निकाला, जो यूरेनियम से तीन सौ गुना ज्यादा सक्रिय था। एक शोध–परक लेख में अपनी खोजों की घोषणा करते हुए उन्होंने लिखा : ''इस तरह हमें विश्वास है कि हमने पिंच ब्लैंड से जिन पदार्थों को प्राप्त किया है, उनमें अब तक अज्ञात रहा एक तत्व उपस्थित है, और विश्लेषण किए जाने पर उसके गुण–धर्म बिस्मथ जैसा लगते हैं। यदि इस नए तत्व की उपस्थिति प्रमाणित हो जाती है, तो हमारा सुझाव है कि हम दोनों में से एक के देश के नाम पर उसे पोलोनियम कहा जाए।'' 26 दिसंबर, 1898 को पढ़े गए इस लेख में ही रेडियोधर्मिता शब्द का सबसे पहले प्रयोग किया गया। इसी लेख में उन्होंने एक और अति सक्रिय तत्व के अस्तित्व की घोषणा की। उन्होंने बताया कि इस तत्व का रासायनिक व्यवहार लगभग वैसा ही है, जैसा कि शुद्ध बेरियम का होता है। उन्होंने इस नए तत्व का नाम ''रेडियम'' रखने का सुझाव दिया।

स्वान्ते अरहेनियस

पियरे और मेरी ने काम का बंटवारा कर लिया था। पियरे विकिरण की विशेषताओं का निरीक्षण करते थे, और मेरी रेडियोधर्मी तत्वों का शोधन करती थीं। रेडियम की थोड़ी सी मात्रा प्राप्त करने के लिए कई टन पिच ब्लैंड अयस्क को संसाधित करना पड़ता था। उससे भी बड़ी कठिनाई यह थी कि क्यूरी दंपति को यह महंगी सामग्री खरीदनी पड़ती थी। पिचब्लैंड से निर्मित होने वाले यूरेनियम लवण का ग्लेज़ बनाने में उपयोग किया जाता था। इसलिए वह काफी महंगा हो गया था। लेकिन एक अच्छी बात यह थी कि यूरेनियम निकाले जाने के बाद अयस्क का अवशिष्ट भाग लगभग बेकार मान लिया जाता था, और क्यूरी दंपति उसे काफी सस्ते दामों में खरीद सकते थे। प्रोफेसर एडवर्ड सुएस और विएना की साइंस अकादमी की प्रेरणा से राज्य की फैक्ट्री की स्वामी आस्ट्रिया सरकार ने क्यूरी दंपति को एक टन पिंच ब्लैंड अयस्क उपहार के तौर पर दिया। उन्हें यह सुविधा भी दी गई कि आवश्यकता होने पर वे खदान से और अवशिष्ट पदार्थ अधिक से अधिक सुविधाजनक शर्तों पर हासिल कर सकते हैं। लेकिन उन्हें आस्ट्रिया से पेरिस तक पिचब्लैंड–अयस्क के अवशिष्ट की ढुलाई का खर्च देना पड़ता था। क्यूरी दंपति ने अवशिष्ट पदार्थ को संसाधित करने का काम एक जीर्ण–शीर्ण छत के नीचे किया। उस छत के बारे में ईव क्यूरी ने लिखा है, ''औषधि–संकाय इस स्थान का उपयोग पहले शल्य–चिकित्सा कक्ष के रूप में किया करता था, लेकिन काफी समय से इसे मुर्दाघर के रूप में इस्तेमाल करने लायक भी नहीं समझा गया। वहां कोई फर्श नहीं था। बस डामर की एक बेतरतीब सी पर्त बिछी हुई थी। वहां रसोई में काम आने वाली कुछ टूटी–फूटी मेजें, न जाने किन कारणों से वहां लाया गया एक ब्लैक बोर्ड और जंग लगी पाइप वाला एक स्टोव रखा हुआ था।

विवाह की भेंट से खरीदी साइकिलों पर यात्रा करके क्यूरी दंपति ने फ्रांस में अपना हनीमून मनाया

कोई भी व्यक्ति ऐसी जगह पर स्वेच्छा से काम नहीं करना चाहेगा, लेकिन मेरी और पियरे क्यूरी ने वहां काम करना स्वीकार कर लिया। उस छज्जे में एक अच्छी बात भी थी; वह इतना अनाकर्षक और जीर्ण–शीर्ण था कि उसका उपयोग करने की अनुमति न देने के बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था।''

मेरी और पियरे क्यूरी उस स्थान का उपयोग करने की अनुमति देने के लिए संस्थान के निदेशक के प्रति हृदय से कृतज्ञ थे। फ्रेडरिक ओस्टवाल्ड (सन् 1853–1932) क्यूरी दंपति के काम करने का ढंग देखने के लिए बर्लिन से पेरिस आए थे। उन्होंने लिखा है : ''काफी आग्रह पर मुझे वह प्रयोगशाला दिखाई गई, जहां कछ ही समय पूर्व रेडियम की खोज हुई थी। यह अस्तबल और आलू रखे जाने वाले तहखाने का मिला–जुला रूप था, और यदि मैंने काम करने की मेज तथा रासायनिक प्रयोगों में काम आने वाले उपकरणों को नहीं देखा होता, तो यही समझता कि मेरे साथ मजाक किया गया है।''

अत्यंत विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करके मेरी ने अंततः लगभग शुद्ध रेडियम क्लोराइड प्राप्त कर लिया। हालांकि उसकी मात्रा एक ग्राम का दसवां भाग ही थी। वे इसे फ्रांसीसी रसायनज्ञ यूज़ीन डेमार्के (सन् 1852–1904) के पास ले गईं।

वर्णक्रममापी के जरिए नए तत्वों की पहचान सबसे पहले यूज़ीन ने ही की थी। उसके पास मेरी द्वारा लाए गए पदार्थ का परमाणु भार निर्धारित करने के लिए पर्याप्त साधन विकसित हो चुके थे। उसने उस यौगिक का परमाणु भार 225.93 निर्धारित किया। मेरी ने अपना डाक्टरेट का शोध प्रबंध 15 जून, 1903 को प्रस्तुत किया। परीक्षक समिति के तीन में से दो सदस्य ग्रब्रिएल लिपमैन (सन् 1845–1921) और फर्डिनेंड फ्रेडरिक हेनरी मोइसन (सन् 1852–1907) भविष्य के नोबेल पुरस्कार विजेता थे। समिति इस नतीजे पर पहुंची कि डाक्टरेट पाने के लिए लिखे गये किसी शोध प्रबंध के माध्यम से विज्ञान के क्षेत्र में इतना बड़ा योगदान पहली बार दिया गया था। उसी साल पियरे और मेरी को प्रोफेसर हेनरी बेकरेल द्वारा खोजी गई रेडियोधर्मिता–परिघटना के बारे में अपने संयुक्त शोधकार्य के माध्यम से दिए गए असाधारण योगदान के लिए भौतिकी का आधा नोबेल पुरस्कार मिला। शेष आधा पुरस्कार स्वस्फूर्त रेडियोधर्मिता की खोज करने वाले बेकरेल को ही मिला। सन् 1903 के भौतिकी के नोबेल पुरस्कार ने प्रेस और आम लोगों में काफी उत्सुकता जगाई। उस समय अखबारों में आम तौर पर साहित्य और शांति के नोबेल पुरस्कारों से संबंधित सामग्री को ही अधिक स्थान दिया जाता था। विज्ञान–संबंधी पुरस्कारों के बारे में यह धारणा थी कि वे अत्यंत गूढ़ होते हैं, अत: उनसे संबंधित सामग्री आम जनता की रुचि की नहीं हो सकती। नोबेल पुरस्कार पाने के बाद मेरी ने लिखा, ''हमें आधा नोबेल पुरस्कार दिया गया है। मैं ठीक–ठीक नहीं जानती कि हमें कितना पैसा मिलेगा, मेरे विचार से हमें लगभग सत्तर हजार फ्रैंक मिलेंगे, जो एक बड़ी राशि है। मैं नहीं जानती कि हमें पैसा कब मिलेगा, शायद वह हमें स्टाकहोम जाने पर मिलेगा। हमें वहां 10 दिसंबर के बाद छह महीने तक व्याख्यायान देने का अवसर दिया गया है।

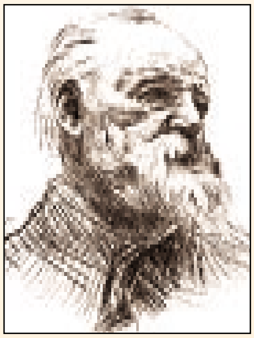

विक्टर ह्यूगो

हम औपचारिक समारोह में भाग लेने नहीं गए। दरअसल मैं स्वयं को शारीरिक रूप से इतना सक्षम नहीं पा रही थी कि ऐसे आंधी–पानी के मौसम में इतनी लंबी यात्रा (बिना रुके 48 घंटे, और रास्ते में रुकने पर और अधिक समय की) करके एक ठंडे देश में जाऊं, और वहां ठहरने के लिए तीन–चार दिन का समय भी नहीं मिले; हमें लंबे समय तक अपना पाठ्यक्रम स्थगित करने पर भी काफी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

हमें भेजे जाने वाले पत्रों और इससे मिलने आने वाले फोटोग्राफरों और पत्रकारों की बाढ़ सी आ गई है। ऐसी स्थिति में तो कोई थोड़ी सी शांति पाने के लिए भूमिगत ही हो जाना चाहेगा। हमें अमेरिका से वहां आने और अपने काम के बारे में व्याख्यान शृंखला को संबोधित करने का निमंत्रण मिला है। उन्होंने पूछा है कि इस काम के लिए हम कितना पैसा चाहते हैं। वे चाहे हमें कितना भी पैसा दें, हम उसे अस्वीकार कर देना चाहते हैं। सन् 1914 में मेरी ने रेडियम संस्थान की

स्थापना में सहायता दी। पूरे प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मेरी एक्स–किरणों के विकिरण से निर्मित होने वाले चित्रों के उपयोग की विधियां विकसित करने के लिए काम करती रहीं। उन्होंने रेडियम इंस्टीट्यूट में सेना की विकिरण चिकित्सक नर्सों को प्रशिक्षण दिया। उस इंस्टीट्यूट को अब क्यूरी इंस्टीट्यूट कहा जाता है। उन्होंने सचल अस्पतालों के रूप में प्रयोग की जाने वाली बीस मोटर गाड़ियों और 200 स्थिर ठिकानों को एक्स–किरण उपकरणों से लैस किया। उन्होंने रेडक्रास जैसी धर्मादा संस्थाओं से कोष प्राप्त किया, और उसकी सहायता से एक्स–किरण उपकरणों को ऐसी रेडियो–चिकित्सा इकाइयों में परिवर्तित कर दिया, जिन्हें काफी आसानी से इधर–उधर ले जाया जा सकता था। उन्होंने धनी महिलाओं को प्रोत्साहित किया कि इन उपकरणों को ढोने के लिए अपनी कारें दान में दें। मेरी ने एक्स–किरण उपकरणों से सुसज्जित एक कार में स्वयं भी यात्राएं कीं और फील्ड–अस्पतालों में जाकर घायल सिपाहियों के शरीर में मौजूद गोलों के टुकड़ों का पता लगाया। उनके इन प्रयासों में उनकी ज्येष्ठ पुत्री आइरीन ने भी मदद की। मेरी और आइरीन ने 150 अन्य लोगों को भी रेडियो–चित्रण का प्रशिक्षण दिया। इन अस्पतालों में 10 लाख से अधिक लोगों का परीक्षण किया गया। युद्ध की समाप्ति के बाद मेरी ने रेडियम प्रतिष्ठान के लिए कोष जुटाने का अभियान शुरू किया। सन् 1921 में अमेरिकी पत्रकार मेरी मैलोनी ने इस अभियान का प्रचार करने के लिए मेरी को अमेरिका जाने के लिए प्रेरित किया। मैलोनी ने स्वयं भी अमेरिकी महिलाओं से धन एकत्र करने के लिए अभियान चलाया, ताकि मेरी को उस पैसे से एक ग्राम रेडियम खरीद कर भेंट के रूप में दिया जा सके। मेरी को इन प्रयासों से खरीदा गया रेडियम तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति वारेन जी. हार्डिंग ने भेंट किया।

आइरीन जोलियट क्यूरी

सन् 1906 में 19 अप्रैल को एक सड़क दुर्घटना में पियरे क्यूरी की मृत्यु हो गई। वह सड़क पार करने की जल्दी में थे तभी लगभग छह टन सैनिक वार्दी से लदी एक घोड़ा गाड़ी उन पर चढ़ गई। पियरे ने घटनास्थल पर ही दम तोड़ दिया। उनकी खोपड़ी का ऊपरी हिस्सा घोड़ा गाड़ी के पिछले पहिए से दबकर टूट गया।

पियरे की मृत्यु के बाद मेरी को सोर्बोन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त किया गया। उसके बाद भी मेरी अपने अभियान में लगी रहीं और उन्होंने कई डेसीग्राम रेडियम क्लोराइड का निष्कर्षण किया। एंड्रे डेबिएर्न की मदद से उन्होंने अंततः रेडियम को धातु रूप में हासिल कर लिया। रेडियम एवं पोलोनियम नामक तत्वों की खोज तथा रेडियम को स्वतंत्र रूप में प्राप्त कर उसकी प्रकृति एवं इस विलक्षण तत्व के यौगिकों के अध्ययन के माध्यम से रसायनशास्त्र के विकास में दिए गए योगदान के लिए सन् 1911 में मेरी को रसायन शास्त्र का नोबेल पुरस्कार दिया गया। रसायन शास्त्र में रेडियम की खोज को आक्सीजन की खोज के बाद की सबसे बड़ी घटना माना गया। कोई तत्व किसी दूसरे तत्व में परिवर्तित हो सकता है, इस तथ्य ने रसायनशास्त्र में क्रांति ला दी और एक नए युग का सूत्रपात किया। कुछ लोगों ने मेरी को दूसरी बार रसायन शास्त्र का नोबेल पुरस्कार देने के नोबेल समिति के निर्णय पर सवाल खड़े किए। इन लोगों का कहना था कि उन्हें दूसरा पुरस्कार भी उसी खोज के लिए दिया गया था, जिसके लिए मेरी और उनके पति को सन् 1903 में भौतिकी का नोबेल पुरस्कार दिया गया था।

सोर्बोन में उनके सहकर्मी और उनके पति के सहयोगी पॉल लैंगेवेन के साथ उनके प्रेम प्रसंग ने फ्रांस में बखेड़ा खड़ा कर दिया। उसने पेरिस के विश्वविद्यालय समुदाय को ही नहीं, बल्कि फ्रांस सरकार के शीर्ष नेतृत्व तक को हिला कर रख दिया। इसे लेकर अखबारों के पहले पन्ने पर सुर्खियां छपीं। पेरिस में उनका रहना दूभर हो गया। वह अपने घर में कैदी होकर रह गईं। स्वीडन की साइंस अकादमी के वरिष्ठ सदस्य स्वांते अर्हिनियस ने मेरी को पत्र लिख कर सुझाव दिया कि वह दूसरा नोबेल पुरस्कार लेने स्वीडन न आएं। दरअसल आर्हिनियस ने अपने पत्र में यह संकेत भी दिया था कि यदि स्वीडन की अकादमी को इस प्रेम–प्रसंग की पूरी जानकारी होती तो वह उन्हें पुरस्कार ही नहीं देती। लेकिन मेरी ने इसी बात पर ठान लिया कि वह समारोह में भाग लेकर रहेंगी। उनका मानना था कि उनके व्यक्तिगत जीवन को उनके वैज्ञानिक कार्यों से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। नोबेल पुरस्कार लेने के लिए 11 दिसंबर को स्टाकहोम में आयोजित समारोह में उन्होंने यह घोषणा भी की कि वह उन्हें दिए गए नोबेल पुरस्कार को पियरे क्यूरी के प्रति श्रद्धांजलि भी मानती है। उन्होंने कहा : ''भाषण के विषय में चर्चा करने से पहले मैं यह याद करना चाहूंगी कि रेडियम और पोलोनियम की खोज मैंने और पियरे क्यूरी ने मिलकर की थी। पियरे क्यूरी ने रेडियो धर्मिता के क्षेत्र में अकेले, अथवा मेरे साथ मिलकर, या अपने शिष्यों की मदद से जो मौलिक अध्ययन किए, हम उसके लिए भी उनके ऋणी हैं।

शुद्ध लक्षण के रूप में रेडियम को अलग करने, और एक तत्व के रूप में उसकी विशेषताओं को निर्धारित करने के लिए किए गए रासायनिक कार्य विशेषकर मैंने ही किए, पर वे हम दोनों के संयुक्त रूप से किए गए कामों से घनिष्ठ रूप से संबंधित थे। इसलिए मैं समझती हूं कि यह स्वीकार करके मैं अकादमी के विचारों को ही व्यक्त करूंगी कि मुझे दिया गया यह उच्च सम्मान साझेदारी में किए गए इस काम से ही प्रेरित है, और यह पियरे क्यूरी की यादों के प्रति एक श्रद्धांजलि है।''

4 जनवरी, 1934 को मेरी की लयुकेमिया से मृत्यु हो गई। उस समय उनकी आयु 67 वर्ष थी। उन्हें ल्युकेमिया तीव्र विकिरण से फेफड़ों के प्रभावित हो जाने के कारण हुआ था। अप्रैल 1995 में मेरी और पियरे की अस्थियां पेरिस के प्रसिद्ध स्मारक भवन में लेखक विक्टर ह्यूगो, राजनीतिज्ञ जीन जोरेस और स्वतंत्रता सेनानी जीन माइलीन की समाधियों के पास स्थापित की गईं। पैनफिऑन (स्मारक भवन) फ्रांस के महान् लोगों की स्मृति का प्रतीक है। यहां फ्रांस के कुछ अति प्रसिद्ध लोगों की समाधियां हैं। मेरी ऐसी पहली महिला थीं, जिन्हें उनकी स्वयं की क्षमताओं के कारण यह सम्मान दिया गया।

मेरी और पियरे अपने आदर्शों को लेकर इतने दृढ़ थे कि अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करने के बावजूद उन्होंने पेटेंट नहीं लिया। उनकी दृष्टि में पेटेंट हासिल करने की प्रक्रिया शोधकर्ताओं की अपेक्षित भूमिका के प्रतिकूल थी। यदि उन्होंने पेटेंट ले लिया होता तो उनके लिए शोधकार्य करना अधिक सुविधाजनक हो गया होता, और उनका स्वास्थ्य भी सुरक्षित रहता।

इस लेख का समापन विश्व को और बेहतर बनाने के बारे में मेरी क्यूरी के विचारों से करना उचित होगा। उनका कहना था, ''आप लोगों में सुधार लाए बिना विश्व को बेहतर बनाने की उम्मीद नहीं कर सकते। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए हममें से प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपने उत्थान की चेष्टा करनी चाहिए, और उसके साथ ही समस्त मानवता के प्रति अपने सामूहिक दायित्व को भी निभाना चाहिए। हमारी उन लोगों के प्रति विशेष जिम्मेदारी है, जिनके लिए हम स्वयं को सर्वाधिक उपयोगी समझते हैं।''

विस्तृत जानकारी के लिए पढ़ें :

1. ईव क्यूरी, मैडम क्यूरी, पेरिस गैलीअर्ड सन् 1938। अंग्रेजी में – डबलडे, न्युयार्क : डबलडे
2. मेरी क्यूरी, पियरे क्यूरी एंड ऑटोबायग्राफिकल नोट्स, न्युयार्क : द मैकमिलन कंपनी, सन् 1923
3. एलिसाबेथ क्राफोर्ड, द बिगिनिंग्स ऑफ द नोबेल इंस्टीट्यूशन, द साइंस प्राइजेज 1901–1915, कैंब्रिज : कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, सन् 1984
4. रोजलिंड फ्लैम, ग्रैंड आबसेशन : मेरी क्यूरी एंड हर वर्ल्ड, न्युयार्क : डबलडे, सन् 1991
5. सुसान क्विन, मेरी क्यूरी : ए लाइफ, न्युयार्क : साइंस एंड सश्टर, सन् 1995
6. राबर्ट रीड, मेरी क्यूरी, लंदन : विलियम कोलिंस संस एंड कंपनी लि. सन् 1974
7. जान ग्रिबिन एंड मेरी ग्रिबिन : क्यूरी इन 90 मिनट्स, हैदराबाद : युनिवर्सिटी प्रेस (इंडिया) लि., 1997

•••

तीखा मसाला

टी.वी. वेंक्टेश्वरन*

कोलंबस दो बार भाग्यशाली साबित हुआ – भारत की खोज के लिए वह लंबी समुद्री यात्रा पर निकला, पर पहुंच गया अमेरिका और दूसरा, उसने सोचा था कि भारत में उसे खूब काली मिर्च मिलेगी लेकिन उसके हाथ लगी – 'चिली' यानी लाल मिर्च, जोकि काली मिर्च का एक पूर्ण विकल्प है। जैसे उसने अमेरिकी भूभाग को भारत समझते हुए वहां के निवासियों को 'रेड इंडियन' नाम से संबोधित किया, उसी प्रकार वहां के निवासियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली एक फली को काली मिर्च का ही एक प्रकार समझते हुए उसने उसे पिमिएंटो नाम दिया। पिमिएंटो स्पैनिश शब्द है जिसका मतलब (काली मिर्च) होता है, जबकि चिली–कैप्सिकम प्रजाति से काली मिर्च का कोई संबंध नहीं है।

मिर्च का पौधा

हमारे देश में आलू, टमाटर, प्याज तथा मिर्च सबसे प्रमुख सब्जियां हैं। इनमें मिर्च तो भारतीय रसोई के लिए हरी मिर्च तो एक अनिवार्य सब्जी है और मसाले में लाल मिर्च का रहना अत्यंत आवश्यक है। दक्षिण पूर्व एशिया, चीन तथा थाइलैंड के कई पकवानों में तीखी, उत्तेजक मिर्च डाली जाती है। ह्यूनान व सेचवान चीनी सूप में, जोकि काफी तीखा व उत्तेजक होता है, मिर्च अनिवार्य रूप से पड़ता है। मिर्च (चिली) व पहाड़ी मिर्च (कैप्सिकम – जिसे उत्तर भारत में शिमला मिर्च भी कहते हैं) भारत व चीन की मूल सब्जियां नहीं हैं, इनकी उत्पत्ति अमेरिका में हुई है। अमेरिका के मूल निवासियों में तीखी, उत्तेजक मिर्च हजारों वर्षों से लोकप्रिय रही है। 5000 ईसा पूर्व में भी दक्षिण अमेरिका के 'रेड इंडियनों' द्वारा तीखी मिर्च वाले भोजन करने का प्रमाण मिलता है।

किस्में : अधिक तीखी – सी फ्रुटेस्कंस एब्रीवाइटम (शॉर्ट पेप्पर); सी फ्रुटेस्कंस कोनॉइड्स (कोन पेप्पर); सी फ्रुटेस्कंस फास्की–क्यूलटम (रेड क्लस्टर पेप्पर); सी फ्रुटेस्कंस लांगम (लांग पेप्पर); अंतिम नाम में चिली, केन्ने व लांग येलो शामिल हैं। तीखे पेप्पर की प्रजातियां हैं : हंगेरियन वैक्स, लार्ज चेरी, लांग रेड केन्ने, मौलेज रेड हॉट, रेड चिली तथा टबास्को। इन सभी का फल पकने पर लाल व नारंगी–लाल रंग का होता है।

मीठा या घंटी पेप्पर – सी फ्रुटेस्कंस ग्रॉसम, मेरीमैक वंडर, पैट्रिक हेनरी, हैरिस अर्ली जाइंट, रूबी किंग तथा ओजार्क जियांट।

चिली या कैप्सिकम?

चिली (मिर्च) व कैप्सिकम (पहाड़ी मिर्च) के बीच क्या अंतर है? इनमें सबसे प्रमुख अंतर है आकृति का – चिली एक फली के आकार का होता है, जबकि कैप्सिकम घंटी के आकार का होता है। लेकिन वनस्पति विज्ञान के अंतर्गत दोनों को एक ही वर्ग – कैप्सिकम मिनिमम, सी. फ्रुटेसेंस के अंतर्गत रखा गया है। चिली अन्य कई नामों से लोकप्रिय है जैसे चिलि, चिले, चिल्ली, अजी, पपरिका तथा कैप्सिकम। इसे केन्ने, रेड पेप्पर, वर्ड पेप्पर, अफ्रीकन पेप्पर आदि नामें से भी जाना जाता हैं

हालांकि कैप्सिकम पेप्पर वर्ग से संबंधित नहीं है, जिसमें सफेद पेप्पर का प्रमुख स्रोत पेप्पर निग्रम एल. होता है।

'कैप्सिकम' शब्द ग्रीक भाषा के शब्द 'कैप्टो' से निकला है जिसका अर्थ होता है 'काटना'। स्पष्टत: यह किसी व्यक्ति द्वारा मिर्च को काटकर खाने से अनुभव होने वाली उत्तेजना व तीखेपन को इंगित करता है। हालांकि मिर्च का पुराना नाम 'चिल्टेपिन' एजटेक भाषा के नाहुएटल बोली से निकला है। यह नाम दो शब्दों चिले तथा टेकपिंटल से मिलकर बना प्रतीत होता है, जिसका मतलब होता है 'पिस्सू मिर्च', जो मिर्च के तीखे, चुभने वाले स्वाद को इंगित करता है।

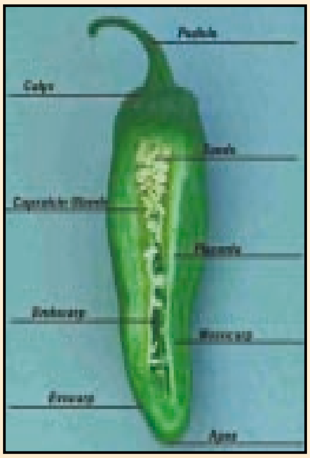
मिर्च के अंग

भोजन के एक अंग के रूप में इसका सर्वप्रथम उपयोग अमेरिकी महाद्वीप में किया गया, जहां 5200 से 3400 ईसा पूर्व में उसकी खेती योग्य पौधों में से एक है। ऐसा माना जाता है मिर्च सबसे पहले लगभग 7000 ईसा पूर्व अमरीकियों द्वारा खोजी गयी। 1500 ईस्वी के बाद ही इसके बारे में शेष दुनिया को पता चल सका। यह भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण पूर्व एशिया, उत्तरी अमेरिका, लातिन अमेरिका तथा दक्षिण अफ्रीका की सर्वाधिक बोयी जाने वाली फसलों में से एक है।

मिर्च व पहाड़ी मिर्च दो अलग वर्ग होते हैं। मीठी मिर्च या मध्यम स्वाद वाली प्रजातियों को भारत में पहाड़ी मिर्च कहते हैं, जो भरवां सब्जी तथा सलाद में उपयोग की जाती हैं। फली आकार की तीखी मिर्च (चिली) प्रमुख रूप से चटनी में या खाने का जायका बढ़ाने के लिए उपयोग की जाती है।

मिर्च व पहाड़ी मिर्च का एकवर्षीय या बारहमासी पौधा होता है जिसमें सीधा काष्ठीय तना होता है। पहाड़ी मिर्च (कैप्सिकम) वर्ग सोलानेसिया (नाइटरोड) परिवार से ही संबंधित है जिसके अंतर्गत टमाटर, आलू, तंबाकू तथा पिट्यूनिया आते हैं। इस पौधे में पत्तियों के अक्ष में तारे के आकार के सफेद फूल पाए जाते हैं। इन फूलों से जुड़ी विभिन्न आकारों व आकृतियों की रसविहीन फलियां होती हैं। पहले इनका रंग हरा होता है, जो बाद में लाल, पीला या जामुनी हो जाता है। इनके अंदर कई सपाट, गुर्दे की आकृति के सफेद बीज होते हैं, जो स्वाद में काफी तीखे होते हैं। वास्तव में तीखापन पैदा करने वाले अधिकांश रसायन फली के छिलके या अन्य भागों में नहीं, बल्कि बीज के आस–पास होते हैं। कैप्साइसिन अणु के कारण ही मिर्च में तीखापन व उत्तेजना होती है। तीखे मिर्चों में यह अणु बीजों की सफेद नसों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

मिर्च से जलन क्यों होती है?

किसी मिर्च को चखने पर हम तीखेपन व उत्तेजना का अनुभव क्यों करते हैं? पेप्पर में पाए जाने वाले कैप्साइसिन अणु के कारण ही तीखेपन का अनुभव होता है। यह बीजों में नही बल्कि बीज अण्डासन के सफेद रसों में पाया जाता है। विविध प्रकार के पेप्पर के पौधों में यह एक सुरक्षा तंत्र के रूप में स्वीकार किया जाता है। तीखे पेप्पर में पाए जाने वाला कैप्साइसिन तंत्रकोशिकाओं में पाए जाने वाले कैप्साइसिन ग्राही प्रोटीन से जुड़कर उन्हें उत्तेजित करने का काम करता है। इसके बाद तंत्रकोशिकाओं के तंतु इस उत्तेजना को जीभ जैसे स्थानों से मेरुरज्जु की जड़ों तक पहुंचाते हैं। कैप्साइसिन कैल्सियम आयनों की बड़ी संख्या को तंत्र कोशिकाओं में प्रवेश को सुगम बनाता है। यह खतरनाक हो सकता है क्योंकि अधिक समय तक कैल्सियम के संपर्क में रहने से तंत्र कोशिकाओं के तंतु नष्ट हो सकते हैं। मिर्च में पाया जाने वाला कैप्साइसिन नामक रसायन हमारे शरीर के नोसीसेप्टर नामक विशेष तंत्र कोशिकाओं को उत्तेजित कर

देता है। ये तंत्र कोशिकाएं ऊतकों की क्षति से संबंधित सूचनाएं मस्तिष्क व मेरुरज्जु के दर्द संसाधक केंद्र तक पहुंचाती हैं। जब नोसीसेप्टर कैप्साइसिन के संपर्क में आती हैं तो वे उत्तेजित हो जाती हैं। चूंकि ये तंत्र कोशिकाएं ऊतकों की क्षति से संबंधित सूचनाएं प्रसारित करती हैं अत: दर्द का अनुभव होता है। एक बार दर्द का बोध हो जाने पर इसकी प्रतिक्रिया व क्षतिपूर्ति के रूप में उत्तेजक रसायनों का स्राव होता है जो क्षतिग्रस्त ऊतकों को सुधारने का प्रयास करते हैं।

> यदि हम एक अत्यधिक तीखी मिर्च को खाते हैं तथा दर्द महसूस करते हैं तो तुरंत दूध पीने से जीभ को राहत मिल सकती है। दूध में पाया जाने वाला केजिन नामक एंजाइम कैप्साइसिन तथा तंत्रकोशिकाओं की बीच बने बंध को तोड़ देता है।

मिर्च के तीखेपन को एक अलग स्वाद के रूप में नहीं स्वीकार किया जाता क्योंकि मिर्च खाने पर हमें एक तरह का दर्द अनुभव होता है। जब हम मिर्च खाते हैं तो इसमें उपस्थित कैप्साइसिनॉयड मुंह में उपस्थित एक ग्राही से जुड़ जाता है। यह वही ग्राही होता है जो गर्मी से जलन का अनुभव करता है। अत: मिर्च खाने पर भी हमें जलन का अनुभव होता है। यह कैल्सियम आयनों का एक कोशिका से दूसरे तक निरंतर प्रवाह का परिणाम है। तीखे अणुओं में इलेक्ट्रॉन बहुल क्षेत्र की तरफ आकर्षित होता है। चूंकि इसके परिणामस्वरूप दर्द उत्पन्न होता है अत: यह एंडार्फिंस मुक्त होने को बढ़ावा देता है। एंडार्फिंस शरीर द्वारा निर्मित किए जाने वाले न्यूरोट्रांसमीटर्स का एक वर्ग हैं तथा आंतरिक रूप से दर्द निवारक रूप में इस्तेमाल किए जाते हैं। एंडार्फिंस मस्तिष्क के कुछ समान ग्राहियों से जुड़कर स्वापक के समान कार्य करते हैं। इस प्रकार वे प्रबल दर्दनिवारक होते हैं। एक अतिरिक्त एंडोफिंस के मुक्त होने से रक्तचाप भी कम होता है जो कि हृदय रोगों का एक प्रमुख सूचक है।

विभिन्न प्रकार की मिर्च

अपने इस गुण के कारण ही कैप्साइसिन एक दर्द निवारक के रूप में उपयोगी है। कैप्साइसिन के उपयोग पर मस्तिष्क को ऊतकों की क्षति की सूचना प्राप्त होती है जिसके कारण वह उपचारात्मक प्रबंध करता है। मध्यस्थ अणुओं के स्राव से मांसपेशियों का दर्द समाप्त हो जाता है।

हालांकि कैप्साइसिन को लंबे अवधि तक तथा लगातार उपयोग करने से हमारे प्रतिसंवेदी तंत्र को भारी क्षति हो सकती है क्योंकि यह नोसीसेप्टर को नष्ट कर सकता है या वाह्य सिरों को क्षति पहुंचा सकता है। तंत्र कोशिकाओं के संपर्क में आने पर कैप्साइसिन 'पी तत्व' को समाप्त कर देता है जो त्वचा से मेरुरज्जु तक दर्द की सूचनाओं के प्रसार में शामिल होता है। पी तत्व पर अंकुश लगा कर कैप्साइसिन एक दीर्घकालिक निश्चेतक के रूप में कार्य करता है जिससे दर्द से राहत मिलती है।

यद्यपि मिर्च की उत्पत्ति अमेरिका में हुई थी, फिर भी आजकल भारत में दुनिया में सबसे अच्छी गुणवत्ता वाली उन्नत प्रजातियां पायी जाती हैं। हल्के तीखेपन की 'मुंडा' तथा मध्यम तीखेपन की 'सन्नम' किस्में दुनियाभर में प्रसिद्ध हैं। अब भारत से मिर्च कई देशों को निर्यात की जाती है जिनमें अमेरिका भी

मिर्च व तीखापन

आकार, आकृति व तीखापन की दृष्टि से मिर्च कई प्रकार की होती है। महाराष्ट्र की लवांग मिर्च आकर में काफी छोटी लेकिन काफी तीखी होती है। केरल की गांधारी मेलागु प्रजाति की मिर्च भी छोटे आकार की लेकिन काफी तीखी होती है। हाल के अध्ययनों से संकेत मिलता है कि नागा जोलोकिया (तेजपुर प्रजाति) संसार की सबसे तीखी मिर्च है।

	स्कोविले इकाई में तीखापन
बेल – पिमेंटो – स्वीट बनाना – क्यूबेनेले – पिमेंटो – रोमानियन	0 से 0 तक
चेरी – पीपरोसिनी – न्यूमेक्स आर – नेकी –	100 से 500 तक
मेक्सिबेल – एजी फ्लोर – सैंटा फी ग्रैन्डे	500 से 750 तक
एनाहिम – सैंडिया – न्यूमेक्स बिग जिम – न्यूमेक्स 6–4	500 से 2,500 तक
इसपैनोला – पॉबलैनो – मुलाटो – आंचो – इसपैनोला–इंप्रूव्ड – पैसिला	1,000 से 2,000 तक
कैस्काबेल – चिलाका – हॉट चेरी	1,000 से 3000 तक
रोकॉटिलो	1,500 से 2,500 तक
टी ए एम जलापेनो – मिरासॉल – केन्ने लार्ज थिक – गुआजिलो – कैस्काबेला – हंगेरियन वैक्स – पीटर – पीपर – टर्किश	2,500 से 5,000 तक
वैक्स – पुया – अजी अमारिलो – रोमेस्को	5,000 से 10,000 तक
जलोपेनो – सेरानो	5,000 से 25,000 तक
डी अरबॉल – कैटेरिना – जापोन्स	15,000 से 30,000 तक
अजी – केन्ने लांग थिन – पिक्विन – प्रिक खी नु – डंडीकट – टबास्को – एंडीन अजी – कोस्टेनो	30,000 से 50,000 तक
यतसाफुला	50,000 से 75,000 तक
चिपोट्ले – सैंटका – थाई – चिल्टेपिन – अजीअमारिलो – अजी लिमॅन – अजी ओरो – क्यूस्क्यूनो – डाटिल	50,000 से 100,000 तक
हबानेरो – वेस्ट इंडियन हॉट	100,000 से 200,000 तक
जमैकन हॉट	100,000 से 325,000 तक
बर्ड – बर्ड्स आई	150,000 से 225,000 तक
स्कॉच बोनेट	150,000 से 350,000
तकरेड सेविना हबानीरो	300,000 से 577,000 तक
प्योर कैप्साइसिन	15,000,000 से 16,000,000 तक

शामिल है। यही नहीं, संभवत: दुनिया की सबसे तीखी मिर्च की किस्म भारत की तेजपुर किस्म है। ग्वालियर के डी.आर.डी.ओ. प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने स्कोविले इकाई के आधार पर मिर्च की विविध किस्मों का परीक्षण किया। मिर्च की 'रेड सेविना हबानीरो' नामक मैक्सिकन किस्म सिर्फ 300,000 स्कोविले इकाई तीखी थी जबकि जलोपेनो तथा पीपरोनिको जेसी आम किस्में सिर्फ 5000 स्कोविले इकाई तक तीखी थीं। लेकिन भारत की तेजपुर किस्म 855,000 स्कोविले इकाई तक तीखी थी।

मिर्च के तीखेपन को मापने का स्कोविले पैमाना

पार्क डेविस फार्मास्यूटिकल्स में काम करने वाले रसायनशास्त्री विल्बर स्कोविले ने 1912 में मिर्च के तीखेपन को मापने का एक तरीका विकसित किया। इस परीक्षण को उनके नाम पर स्कोविले आर्गनोलेप्टिक परीक्षण कहा गया। यह एक सीधी–सादी तनूकरण–परीक्षण प्रक्रिया है। शुद्ध मिर्च के चूर्ण को चीनी–पानी के घोल में मिलाया जाता हैं इसके बाद इस घोल की बढ़ती तनुता के अनुसार परीक्षकों की एक समिति इसे तब तक चखती है, जब तक एक ऐसे बिंदु तक नहीं पहुंच जाती जिस पर विलयन को चखने पर मुंह में जलन नहीं होती। इस प्रकार विलयन के तनु होने की उस सीमा जिस पर कि जलन न हो, तक पहुंचने में लगे समय के आधार पर प्रत्येक मिर्च के लिए एक संख्या निर्धारित कर दी जाती है। आजकल हाई–पर्फार्मेंस लिक्विड क्रोमैटोग्राफी (एचपीएलसी) परीक्षण विधि का इस्तेमाल किया जाता हैं। इस प्रक्रिया में मिर्च की फली को सुखाया जाता है, चूर्ण बनाया जाता है। इस अर्क को एचपीएलसी विधि से विश्लेषित करते हैं तथा नमूने में मौजूद विभिन्न कैप्साइसिनॉयड्स की मात्रा निर्धारित कर ली जाती है। इससे मिर्च के तीखेपन को मापने की एक वस्तुनिष्ठ इकाई प्राप्त हो जाती है।

मिर्च का तीखापन 100 इकाई के गुणक में मापी जाती है, घंटी मिर्च के शून्य स्कोविले इकाई से लेकर अत्यंत तीखे हबानीरो के 300,000 इकाई तक। यदि हम शुद्ध कैप्साइसिन की एक बूंद पानी के 1,000,000 बूंद में डालें तो यह शुद्ध कैप्साइसिन के 15,000,000 स्कोविले इकाई से अधिक दर के लिए 1.5 स्कोविले इकाई ही होगा।

वास्तव में मिर्च के तीखेपन व उत्तेजना के स्रोत सात सटे हुए अणु होते हैं जिन्हें कैप्साइसिनॉयड कहते हैं। इनमें से मिर्च के तीखेपन में 90 प्रतिशत से अधिक योगदान कैप्साइसिन तथा डीहाइड्रोकैप्साइसिन का होता है। ओलियोरेसिन कैप्सिकम (O C) एक अर्क है जिसे केन्ने चिली के पाउडर से बनाया जाता है। उस अर्क का उपयोग दंगा नियंत्रक अभिकर्मक के रूप में किया जा सकता है। ओ.सी. पाउडर में एयरोसॉल मिलाकर इसे दंगा नियंत्रण के लिए उपयोग कर सकते हैं। केन्ने चिली से बनाया गया प्राकृतिक ओलियोरेसिन कैप्सिकम इस तरह के संश्लेषित रसायनों जैसे आर्थो–क्लोरो बेंजल मलोनोनाइट्राइल तथा क्लोरोएसिटोफीनोन से कम घातक होते हैं। प्राकृतिक ओ.सी. पर्यावरणीय दृष्टि से भी सुरक्षित होता है अत: दंगा नियंत्रक अभिकर्मक के रूप में इसकी काफी मांग है। कभी भी जब आप टी.वी. स्क्रीन पर दंगे का दृश्य देखें तथा पुलिस को दंगा नियंत्रक अभिकर्मक का प्रयोग करते देखें तो समझ लें कि वह केन्ने चिली से ही बना होगा।

मिर्च का रसायन शास्त्र

मिर्च के अर्क कैप्साइसिनॉयड में एन–वेनाइलिल–8 मिथाइल–6–(ई) – ननएमाइड (कैप्साइसिन), नॉरडाइहाइड्रोकैप्साइसिन (या डाइहाइड्रो–कैप्साइसिन), होमोकैप्साइसिन तथा होमोडाइहाइड्रोकैप्साइसिन पाया जाता है। मिर्च में पाए जाने वाले कैप्साइसिनॉयड का 80 से 90 प्रतिशत हिस्सा कैप्साइसिन व डाइहाइड्रो कैप्साइसिन से मिलकर बना होता है।

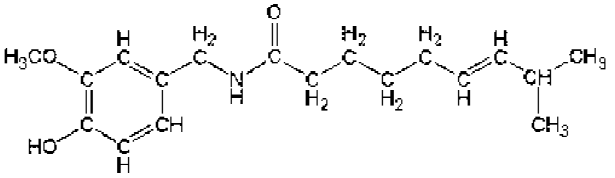

कैप्साइसिन

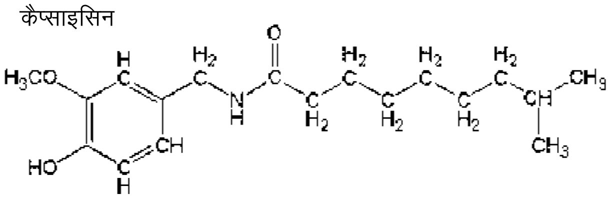

हाइडाइड्रोकैपसाइसिन

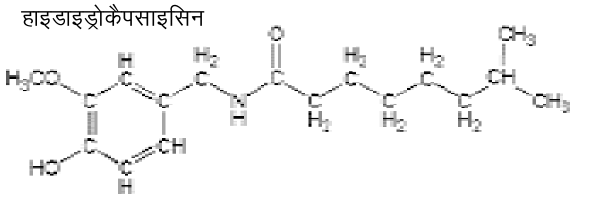

नॉरडाइहाइड्रोकैप्साइसिन

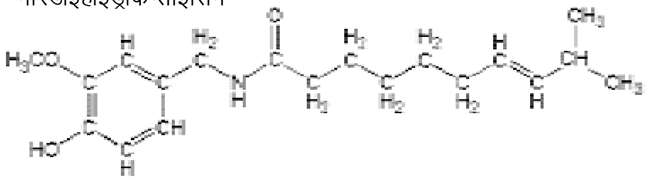

होमो कैप्साइसिन

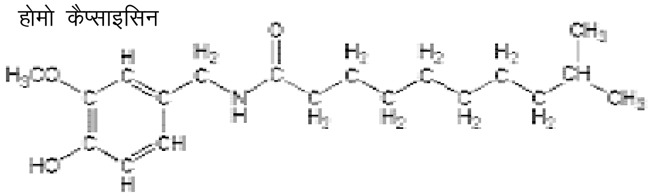

होमोडाइहाइड्रोकैप्साइसिन

औषधीय प्रयोग

कैप्सिकम अथवा तीखे लाल मिर्च पेप्पर का भी उपयोग खाद्य मसालों तथा नयी चिकित्सीय औषधियों दोनों में किया जाता है। लाल मिर्च या केन्ने पेप्पर खाद्य मसाले तथा पाचन सहायक के रूप में लंबे समय से उपयोग किया जा रहे हैं। पहले इसे पेट के अल्सर को बढ़ाने वाला माना जाता था। लेकिन अनुसंधानकर्ताओं ने इस आशंका को निराधार ठहराते हुए कहा कि इसके बजाए कैप्सिकम रक्त का थक्का बनने पर अंकुश लगा सकता है। अब नए अनुसंधानों में प्रदाहकरोधी एजेंट तथा दर्द नियंत्रण में सहायक के रूप में मिर्च की क्षमता पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है।

थाइलैंड के अनुसंधानकर्ताओं ने सबसे पहले यह गौर किया था कि अधिक मात्रा में लाल मिर्च पेप्पर खाने वाले लोगों में थ्राम्बो एम्बॅलिज्म अथवा खतरनाक रक्त का थक्का जमने की बीमारी कम होती है। इसके बाद वैज्ञानिकों ने ऐसे देशों के मेडिकल रिकॉर्ड की जांच की जहां नियमित रूप से तीखे मसालों वाले खाद्य पदार्थ इस्तेमाल किए जाते हैं। तब यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि ऐसे लोग जो भोजन में अधिक मात्रा में लाल पेप्पर लेते हैं, रक्त का थक्का जमने के रोग से कम पीड़ित होते हैं। वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि कैप्सिकम फाइब्रिनॉलिटिक गतिविधि पर अंकुश लगाता है, जिसका मतलब यह है कि यह रक्त के थक्कों को तोड़ता है।

मिर्च से प्राप्त कैप्सिकम अथवा केन्ने काफी पौष्टिक होता है। इसमें विटामिन सी व बी कांप्लेक्स, लोहा, कैल्सियम तथा फास्फोरस पाया जाता है। अधिकतर मिर्च पेप्पर का लाल रंग उनमें विटामिन ए की अधिक मात्रा के कारण होता है। परंपरागत रूप से मिर्च पेप्पर का उपयोग पाचन सहायक के रूप में किया जाता रहा है तथा इसे रक्तशोधक माना जाता रहा है। कैप्सिकम का उपयोग गला खराब होने पर गरारे करने के लिए भी किया जाता है।

पाचन सहायक के रूप में लाल मिर्च का उपयोग थोड़ा–थोड़ा ही करना

शेष पृष्ठ .... 12 पर जारी

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

कास्मिक धुंध 'आकश गंगा के जीवन की कुंजी'

कास्मिक धुंध न केवल हमारे ग्रह बल्कि आकाश गंगा के अनेक सौर–प्रणालियों पर जीवन देती है।

उल्का पिण्डों पर किए गये अध्ययन से यह तथ्य सामने आया कि जटिल कार्बनिक अणु हमारी सौर–प्रणाली के निर्माण के समय जीवित बच जाते हैं और वह पृथ्वी पर उपस्थित चट्टानों पर आ जाते हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारी और अन्य सौर–प्रणाली में कार्बनिक अशुद्धियों की धूल चढ़ जाती है जो जीवन प्रदान करने में सहायक होती है।

कैलीफोर्निया के नासा एम्स रिसर्च सेन्टर के मैक्स बर्नस्टन बताते हैं कि यह घटना अन्य स्थानों की अपेक्षा इसे अधिक चमकीला बनाती है।

पोलीसाइक्लिक सुगंधित हाइड्रोकार्बन सामान्यतः अंतरिक्ष में उपस्थित रहते हैं और इनमें से कई जीवन के प्राथमिक पदार्थ हैं। परन्तु अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका है कि उल्का पिंडों में उपस्थित पी.ए.एच. हमारी सौर–प्रणाली को जन्म देती है या बाद में यह बेकार पदार्थ बन जाते हैं।

न्यू साइंटिस्ट, अगस्त 2002

खाने में मछली की मात्रा, मोटापे में कमी

वैज्ञानिकों के अनुसार खाने में मछली की मात्रा मोटापा नियंत्रण करने में सहयोगी होती है क्योंकि यह लेप्टिन हार्मोन्स के स्तर को कम कर देती है। शरीर में मोटापे की कोशिकाएं लेप्टिन के स्तर को कम कर देती है जिसमें मोटापा और हृदय संबंधी बीमारियां कम हो जाती हैं। परन्तु अभी तक यह ज्ञात करना कठिन था कि यह प्रणाली कैसे कार्य करती है। परंतु सरकुलेशन जर्नल में प्रकाशित लेख के अनुसार खाने की मात्रा महत्वपूर्ण होती है।

वैज्ञानिकों को काफी समय से यह ज्ञात हो चुका था कि मछली और उसका तेल मानव में हृदय संबंधी रोगों में लाभकारी है। इसके अतिरिक्त चूहों पर किए गए अनुसंधान से पता चला कि मछली में उपस्थित असंतृप्त तेल लेप्टिन के स्तर को प्रभावित करता हैं मायोक्लीनिक के मिकोलाज विनकी और उनके सहयोगियों ने समान प्रभाव मनुष्यों में दिखने के लिए परीक्षण किया। अपने परीक्षण के लिए उन्होंने 600 व्यक्तियों का मास इंडेक्स, फेट कंटेंट, उम्र, लिंग, भोजन की मात्रा और लेप्टिन के स्तर का परीक्षण किया। इन व्यक्तियों में लगभग आधे झील के किनारे रहते थे और मछली अपने भोजन में लेते थे। बाकी लोग शुद्ध शाकाहारी थे। वैज्ञानिकों ने पाया कि मछली खाने वालों में लेप्टिन का स्तर शाकाहारियों की तुलना में कम था। खोजकर्ताओं ने यह भी पाया कि महिलाओं में लेप्टिन का स्तर जो मछलियां खाती थीं, पुरुषों की तुलना में जो पूर्ण शाकाहारी की अपेक्षा आधा था।

साइंटिफिक अमेरिकन, अगस्त 2002

लेसर की भांति सूक्ष्म प्रकाश बीम विकसित

कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी की विमाएं नैनो–स्केल तक हो गयी हैं। अतः वैज्ञानिक उनकी छोटी रचनाओं को देखने और मापने में दिक्कत महसूस कर रहे हैं। मीटर का करीब करोड़वां भाग होने के कारण आधुनिक मशीनों में प्रयुक्त होने वाले संघटक प्रकाश की तरंगदैर्घ्य भी छोटी हो गयी हैं। इस कारण उनको देखना असंभव हो गया है। अनुसंधानकर्ता लेसर की भांति प्रकाश किरणों को विकसित करने का प्रयास करते रहे हैं जिसकी तरंगदैर्घ्य प्रकाश की तरंगदैर्घ्य से छोटी हो, परन्तु परिणाम सदैव अपेक्षानुसार नहीं रहे। इसके अतिरिक्त प्रायोगिक रूप से इस उपकरण को प्रयोग करना असुविधाजनक था। नयी खोज के अनुसार वैज्ञानिकों ने यह पाया कि उच्च–अल्ट्रावायलेट प्रकाश का प्रयोग करके प्रकाश बीम को बनाना संभव है।

पारंपरिक रूप से प्रयुक्त किए जाने वाले लेसर में गैस से भरे हुए चैम्बर के दोनों सिरों पर सीसा होता है – जो प्रकाश को पीछे एवं आगे परावर्तित करता है जिससे फोटान एक साथ हो जाते हैं और प्रकाश की तीव्रता बढ़ जाती है। यूनिवर्सिटी ऑफ कोरलडो के रेण्डी बारटेल्स और उनके सहयोगियों ने अपने नये कार्य में आर्गन गैस से भरी ट्यूब का प्रयोग कर उच्च तीव्रता वाली दृश्य प्रकाश किरणें दिखायी। एक विशेष रूप से निर्मित की गयी संरचनात्मक वेबगाइड से गुजरकर उच्च अल्ट्रावायलेट तरंगदैर्घ्य वाले फोटानों में से नेनोमीटर का दसवां भाग निकलता है। यह उच्च तीव्रता वाली किरणों का फोकस लेसर से दूर होता है और इससे अति सूक्ष्म वस्तुएं भी देखी जा सकती है।

इस नयी प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग अनेक हैं। विशेषकर छोटे आकार का यंत्र इसे अधिक अनुप्रयोगी बना सकता है। इससे अणुओं के व्यवहार का परीक्षण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इंजीनियर निर्माण प्रणाली में डिजाइन एवं परीक्षण में उपयोग कर सकते हैं।

साइंटिफिक अमेरिकन, अगस्त 2002

संकलन : कपिल त्रिपाठी

पृष्ठ .... 11 का शेष

तीखी फली को पसंद करने वाले

आंध्रप्रदेश के लोग अधिक मिर्च वाले चटपटे खाने को पसंद करने के लिए जाने जाते हैं। ऐसा पता चला है कि पक्षी भी मिर्च पसंद करते हैं। मिर्च के बीज पक्षियों द्वारा ही विभिन्न स्थानों तक फैलते हैं। यह आश्चर्यजनक है कि तीखी मिर्च की फली पक्षियों को इतना पंसद क्यों होती है। वास्तव में चमकीले लाल रंग की इसकी फली पक्षियों को आकर्षित करती है। लेकिन अत्यधिक तीखी मिर्च खाने पर क्या पक्षियों को दर्द व जलन नहीं होती तथा वे भविष्य में पुनः इसे खाने से बचते हैं? यदि बीजों के बिखरने के लिए पक्षी आवश्यक हैं तो उन्हें मिर्च खाने से जलन क्यों हो? यदि हम चाहते हैं पक्षी मिर्च की फली खाएं तथा उन्हें पचाकर बीज किसी और क्षेत्र में जाकर गिराएं तो मिर्च में इतना उत्तेजक, तीखा कैप्साइसिन क्यों डालते हैं।

इन सब प्रश्नों का उत्तर यही है कि पक्षियों को महक व स्वाद की अनुभूति बहुत कम होती है, तीखी फली खाने में भी उन्हें परेशानी नहीं होती। जबकि छोटे व बड़े सभी स्तनधारी मिर्च खाने से बचते हैं क्योंकि उन्हें तीव्र जलन होती है।

पक्षियों को मिर्च के बीज बिखेरने का उचित पुरस्कार भी मिलता है। मिर्च में बीटा कैरोटीन, विटामिन सी तथा वसा होता है, अतः यह उनके लिए एक पोषक भोजन होता है। विशेषकर वसा महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे संचित ऊर्जा के स्रोत होते हैं, तथा अन्य अधिकतर फलों में नहीं पाए जाते।

स्तनधारियों के विपरीत पक्षियों में भोजन बहुत जल्दी पचता है। मिर्च का बीज पक्षियों के पेट में लगभग 20 मिनट तक ही संक्रमण स्थिति में रहता है। पाचन क्रिया में बीज नष्ट नहीं होता तथा पक्षियों द्वारा बिष्ठा त्यागने पर बाहर आ जाता है। इस प्रकार यह पारस्परिक सहयोग का रिश्ता हैं जिसमें मिर्च के पौधे को अपने बीज बिखेरने में सफलता मिलती है तथा पक्षियों को आवश्यक पोषण तत्व प्राप्त होते हैं। यह पौधों व पक्षियों के बीच विकासमूलक सहजीवन का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

कैप्सिकम

चाहिए ताकि तकलीफ न हो। कैप्सिकम को अब तक ज्ञात सबसे शुद्ध व निश्चित उद्दीपक माना जाता है। शरीर में विचरण करने वाले तत्वों के साथ मिलकर कैप्सिकम परिसंचरण व पाचन तंत्र की सहायता करता है, दर्द का निवारण करता है तथा सर्दी को दूर करता है।

यह छोटा सा तीखा फल कई रोगों के उपचार में सहायक होता है, लेकिन कैप्सिकम का सबसे महत्वपूर्ण योगदान रक्त परिसंचरण में सहायक होता है। यह कोशिकाओं, धमनियों, सिराओं तथा हृदय को पुनर्जीवन देता है।

कुछ अन्य बीमारियां जिनके उपचार में कैप्सिकम परंपरागत रूप से सहायक रहा है : उच्च रक्त चाप, नाक से खून बहना, वेरिकोज वेंस, नासूर, अत्यधिक कफ, कीड़े का काटना, हृदयघात , दमा, गठिया, पाचन की समस्या।

**डा. टी.वी. वेंकटेश्वरन, हाल ही में वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी के रूप में विज्ञान प्रसार परिवार से जुड़े हैं।*

• • •

नेहरू तारामंडल और विज्ञान शिक्षा

एन. रत्नाश्री*

जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल फंड की स्थापना 1964 में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा की गयी। वे बच्चों को देश का सर्वाधिक कीमती संसाधन मानते थे तथा यह चाहते थे कि बच्चों को वे सभी अवसर प्रदान किये जायं जिससे वे देश के जिम्मेदार नागरिक बन सकें। उन्होंने देखा कि विज्ञान की विधि एवं उत्साह की समझ इस प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन सकता है। इसलिए जवाहरलाल मेमोरियल फंड ने दो तारामंडलों का निर्माण करवाया – छोटा तारामंडल आनंद भवन, इलाहाबाद में, जो उनका पुश्तैनी घर है तथा दूसरा अपेक्षाकृत बड़ा तारामंडल नयी दिल्ली के तीन मूर्ति भवन में जो सत्रह वर्षों तक भारतीय प्रधानमंत्री का सरकारी निवास था। तीनमूर्ति भवन में तारामंडल का उद्घाटन भारत की तीसरी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने 6 फरवरी, 1984 को किया।

तीनमूर्ति भवन का निर्माण ब्रिटिश भारत के कमांडर–इन–चीफ़ के निवास के रूप में 1928 में हुआ। यह औपनिवेशिक स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण हैं। यह भवन विस्तृत मैदान में स्थित है जिसमें कई प्रकार के पेड़, खूबसूरत झाड़ियां और फूलों के पौधे लगे हुए हैं। आज इसमें एक संग्रहालय भी है जिसमें जवाहरलाल नेहरू के सोने और काम के कमरे, जब यह उनका सरकारी निवास था, सुरक्षित हैं। इस विशाल भवन के एक दूसरे कक्ष में स्वतंत्रता आंदोलन की चित्रमय कहानी को प्रदर्शित किया गया हैं। उसको पार करने के बाद एक प्रेक्षागृह और आधुनिक इतिहास का एक विश्वस्तरीय पुस्तकालय भी है। इस तारामंडल को स्थानीय वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए डिजाइन किया गया है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह समीप के स्मारक कुशक महल से प्रभावित है। यह लोधियों द्वारा 13वीं शताब्दी में शिकारियों के लिए निर्मित एक निवास स्थल है। इस समय जहां यह तारामंडल अवस्थित है वहां बोगेनविलिया और छायादार नीम के पेड़ों से घिरे हुए टेनिस कोर्ट थे। तारामंडल के निर्माण के दौरान पहले के सभी पेड़ों को सुरक्षित रखने तथा बाड़ बनाने के प्रति सावधानी बरती गयी। सम्प्रति पत्थर निर्मित तारामंडल का गुम्बद पूरी तरह से फले–फूले नयी बोगेनविलिया से जड़ा हुआ है। यह तारामंडल को स्थापत्य कला की दृष्टि से अद्वितीय और सुंदर तीनमूर्ति कॉम्प्लेक्स का एक सुसंगत सदस्य बनाता है।

इस तारामंडल के निर्माण के दौरान भारत में तारामंडल स्थापत्य के क्षेत्र में पहली बार कई नयी प्रविधियों का इस्तेमाल किया गया। वातानुकूलित स्काई थियेटर में गुम्बदाकार एक पर्दा है, जो फाइबर ग्लास से बना है। इस बड़े पर्दे में 26 वक्रित भाग हैं, जिसमें बेहतर ध्वनिकी के लिए हस्त निर्मित 10 लाख छिद्र हैं और यह अपनी तरह का अकेला है। कार्ल जेइस स्पेसफ्लाइट मास्टर प्रोजेक्ट एक द्रवचालित लिफ्ट पर रखा गया है, जो प्रत्येक शो के समय प्रोजेक्टर को ऊपर लेकर आता है। ऐसा इस तारामंडल में पहली बार किया गया है। स्काई थियेटर के चारों ओर गैलरी है, जिससे स्लाइड और विशेष प्रभाव वाले प्रोजेक्टरों को पता करने में सहायता मिलती है। तिजोरीदार छत के साथ वातानुकूलित प्रदर्शन क्षेत्र नमाईश क्षेत्र की सुंदरता में वृद्धि करता है। इसमें अन्योन्य क्रिया संबंधी बहुत से मॉडल और चित्र रखे गये हैं। तारामंडल को अपने प्रदर्शन पर काफी गर्व है। इसमें ऐतिहासिक अंतरिक्ष यान सोयूज–टी 10 का मॉड्यूल–जिससे भारत के प्रथम और एकमात्र अंतरिक्ष यात्रा राकेश शर्मा पृथ्वी पर वापस आये थे, उनका अंतरिक्ष सूट और उनके इस मिशन से संबंधित पत्रिकाएं रखी गयी हैं।

तारामंडल में वातानुकूलित कक्ष है जहां अस्थायी चित्र प्रदर्शनी आयोजित की जाती है। चित्र और ध्वनि स्टूडियो दो अन्य वातानुकूलित इकाइयां हैं। अन्य इकाइयां हैं : कार्यालय, पुस्तकालय, इलेक्ट्रॉनिक एवं यांत्रिक कार्यशाला, और सेवा कक्ष। तारामंडल के छज्जे (खुली छत) पर पुस्तक व स्मारिका दुकान और एक कैंटीन है जो भौतिक सुविधाओं को पूरा करता है।

नेहरू तारामंडल भारत का पहला तारामंडल था, जिसने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी कि इसका प्राथमिक लक्ष्य खगोलशास्त्र की शिक्षा है। तारामंडल इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए क्या करता है? इस उद्देश्य को प्राप्त करने में सभी अंदरूनी सुविधाएं सहायता प्रदान करता हैं। इस संदर्भ में टेप किये गये सार्वजनिक प्रदर्शन महत्वपूर्ण होते हैं। वस्तुतः ऐसा सभी सार्वजनिक तारामंडलों में होता है। लेकिन उनके बीच अंतर प्रारंभ होता है पाठ्यचर्या आधारित आंखों देखे प्रदर्शन से, जिसको विशेष रूप से स्कूली छात्रों के लिए तैयार किया गया है। मांग करने पर विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए भी ऐसी तैयारी की जाती है। कहानी पर आधारित बच्चों के प्रदर्शन (Shows) एक दूसरा नवीकृत फॉर्मेट है, जिसका इस्तेमाल संचार में किया जाता है। स्कूलों में दिखाये जाने वाले आंखों देखे प्रदर्शनों के लिए तारामंडल द्वारा गतिविधि पत्रों को डिजाइन किया गया है। प्रभावशाली शिक्षण के लिए तारामंडल का इस प्रकार का इस्तेमाल विश्व भर में पहला है। अन्योन्य क्रिया संबंधी प्रदर्शन क्षेत्र शोज के लिए पूरक होता है तथा तारामंडल यात्रा का एक आंतरिक भाग होता है। स्कूल और कॉलेज छात्रों के साथ की जाने वाली गतिविधियां तारामंडल शैक्षणिक अग्रगामी कार्यक्रमों की अन्य सतत (स्थायी) विशेषताएं हैं।

छात्रों के लिए किये जाने वाले पाठ्यचर्या आधारित आंखों देखे प्रदर्शन नियमित रुप से विद्यालयों के लिए उपलब्ध होते हैं। इनको निरंतर संशोधित किया जाता है तथा विद्यालयों के लिए वर्तमान समय में उपलब्ध आंखों देखे प्रदर्शनों में नीचे दी गयी सूची के तहत समय–समय पर नये कार्यक्रमों को जोड़ा जाता है। लगभग 270 छात्र एक समय में इन आंखों देखे व्याख्यानों को सुन व देख सकते हैं। ये उच्च अन्योन्य क्रियात्मक व्याख्यान होते हैं जिसके साथ संबंधित गतिविधियों के उदाहरण भी दिये जाते हैं। यहां एक व्याख्यान में खगोलशास्त्र की बहुत–सी साधारण अवधारणाओं पर चर्चा की जाती है, जिसमें तारामंडल की सभी प्रदर्शन सुविधाओं, अन्योन्य क्रियात्मक मॉडलों और जीवंत प्रश्नोत्तर सत्रों का इस्तेमाल किया जाता है। पिछल दो सालों में तारामंडल में कुल 375 स्कूल प्रदर्शन आयोजित किये गये। इन प्रदर्शनों में निम्न विषयों को शामिल किया गया:

नवीं से बारहवीं कक्षाओं के लिए: 1. मंगल ग्रह पर फोकस : मंगल अन्वेषण व अभियान का इतिहास तथा मंगल संबंधी विज्ञान की हमारी वर्तमान समझ। 2. सूर्य, हमारा शुष्क समय का तारा : सूर्य, उसकी आंतरिक बनावट ऊर्जा उत्पादन प्रक्रिया। 3. हमारा ब्रह्मांड : इसकी शुरुआत से (बिग बैंग आदि) ब्रह्मांड की समझ। 4. प्रकाश : प्रकाश, उसके उत्पादन, प्रसार और उसकी विशेषताओं के बारे में जानकारी। खगोलीय पिंडों से विद्युत–चुम्बकीय विकिरण, विभिन्न तरंगदैर्ध्य क्षेत्रों से होने वाले विकिरण का पता लगाने वाले दूरबीन और अन्य उपकरण। 5. पृथ्वी प्रणाली : पृथ्वी की गतिशील आंतरिक बनावट की प्रकृति, अपने चतुर्दिक वातावरण से उसकी अन्तःक्रिया, सूर्य–पृथ्वी संबंध। 6. पल्सर : आकाश में विद्यमान इन अन्यस्थानिक पिंडों का अवलोकन, उनका प्रेक्षण और उनकी सामयिक समझ। 7. सेटी (SETI) : वर्तमान में चल रहे सेटी (SETI : Search for Extra-Terrestrail Intelligence) अर्थात् बाह्य अंतरिक्षीय बुद्धिमता की खोज की वर्तमान परिस्थिति। 8. एक तारे की जीवन कहानी : तारों की उत्पत्ति, उद्विकास और मृत्यु के बारे में सामयिक जानकारी।

छठवीं से आठवीं कक्षाओं के लिए: 1. रात में आकाश को देखना : स्काई थियेटर में कुछ रुचिकर तारामंडलों, द्विनेत्री नेबुलाओं और आकाश–गंगाओं को देखने के साथ ही साथ आकाश में निर्देशांकों का प्रारंभिक ज्ञान। 2. सौरमंडल :

सौरमंडल के पिंडों के बारे में आपकी सामायिक जानकारी में अभिवृद्धि करना। 3. अंतरिक्ष में हमारा पड़ोसी चांद : चंद्र अभियानों का इतिहास, वर्तमान समय में हमारी जानकारी और भविष्य की संभावनाएं। 4. ग्रहण : सौरमंडल में सूर्यग्रहण से लेकर चंद्रग्रहण तक की जानकारी। आंशिक, पूर्ण और वलयाकार ग्रहण भी। 5. धूमकेतु, उल्कापिंड और उल्का वृष्टि : सौरमंडल में विभिन्न प्रकार के पिंडों के ढेर की जानकारी तथा पृथ्वी से इनके आश्चर्यजनक प्रदर्शनों का अवलोकन।

पहली से पांचवीं कक्षाओं के लिए : 1. रात में आकाश को देखना 2. ध्रुवतारा और उत्तर दिशा में उसकी उपस्थिति 3. चंद्रमा का आकार 4. रात, दिन और मौसम

तारामंडल में सीनियर स्कूलों और कॉलेज छात्रों के लिए विशेषीकृत कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है। ये तकनीकी कार्यशालाएं होती हैं, जिनमें सैद्धांतिक व्याख्यानों के तुरंत बाद सामान्यतः अवलोकन शामिल होते हैं। तारामंडल द्वारा हाल ही में दो कार्यशालाएं संचालित की गयीं – पहली, सौरधब्बा अवलोकन कार्यशाला जिसका आयोजन सीनियर स्कूल और कॉलेज छात्रों के लिए दिसम्बर 2001 में किया गया, तथा दूसरी, खगोलशास्त्र पर ग्रीष्मकालीन कार्यशाला जिसका आयोजन मई 2002 में किया गया तथा इसमें निम्न विषय शामिल किये गये : खगोलीय क्षेत्र आकाश एवं निर्देशांकों में बदलाव; प्रारंभिक आकाश अवलोकन – स्काई थियेटर का एक सत्र; खगोलशास्त्र में कम्प्यूटर – बेसिक प्लैनेटेरियम सॉफ्टवेयर; उन्नत सॉफ्टवेयर; रात में आकाश का अवलोकन, सूर्य के बारे में जानकारी; सौर धब्बे – सिद्धांत एवं अवलोकन; सौरमंडल; तारे एवं उनका उद्भव; खगोलशास्त्र में प्रकाशीय सहायता; खगोलशास्त्र में कैरियर और परियोजनाएं।

हर वर्ष बड़ी संख्या में स्कूल व कॉलेज के विद्यार्थी अपने पाठ्यक्रम की जरुरतों के एक हिस्से के रुप में खगोल विज्ञान से जुड़े किसी टॉपिक पर दीर्घकालीक परियोजना को पूरा करने के लिए तारामंडल में कार्य करते हैं। विगत दो वर्षों में कक्षा बारह बी. एस–सी. तथा एम. एस–सी. के लगभग 22 विद्यार्थी तारामंडल में विविध परियोजनाओं पर कार्य करते रहे हैं तथा उन्होंने अपने पाठ्यक्रम की जरुरतों के हिसाब से उन्हें जमा भी कर दिया है। इन दो वर्षों में जे.डी. टाइटलर स्कूल, होली चाइल्ड आग्जिलियम स्कूल, सरदार पटेल विद्यालय, सेंट स्टीफेंस कॉलेज, मिरांडा हाउस, खालसा कॉलेज, एस डी कॉलेज तथा दिल्ली विश्वविद्यालय एम एस सी (भौतिकी) के विद्यार्थियों ने विविध परियोजनाओं पर कार्य किया। सीनियर स्कूल के विद्यार्थियों ने विविध परियोजनाओं पर कार्य किया। सीनियर स्कूल के विद्यार्थियों द्वारा चुने गए टॉपिक थे – बृहस्पति के उपग्रहों के लिए कैपलर कक्षा का अध्ययन, उल्का–वृष्टि, पृथक ग्रहों का अध्ययन आदि। इसी प्रकार बी. एस–सी. व एम एस सी के विद्यार्थियों द्वारा चुने गए टॉपिक थे – सूर्य, सौर कलंक (sunspots) तथा पल्सर।

छुट्टियों के दौरान प्रायः एमेच्योर एस्ट्रोनॉमर्स एसोसिएशन के सहयोग से विशेष गतिविधियां चलायी जाती हैं। इनमें आमोद–प्रमोद के साथ–साथ खगोलीय पिंड़ों के बारे में जानकारी भी प्राप्त हो जाती है। इन गतिविधियों में प्रमुख है सौर मंडल की सैर, चांद उत्सव, बृहस्पति उत्सव आदि। इनका उद्देश्य आमोद–प्रमोद की गतिविधियों के माध्यम से ही इन खगोलीय पिंडों से जुड़ी धारणाओं की व्याख्या करना है। एस्ट्रोनॉमी ओलंपियाड अथवा इंटेल विज्ञान प्रतिभा मेला जैसे अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रतियोगिताओं के आयोजन के अवसर पर तारामंडल विद्यार्थियों के लिए एक उपयोगी संसाधन केंद्र साबित होता है। विगत तीन वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय एस्ट्रोनॉमी ओलंपियाड में तारामंडल सक्रिय रुप से भाग लेता रहा है। ओलंपियाड के लिए विद्यार्थियों के प्रीस्क्रीनिंग से पूर्व तारामंडल में प्रारंभिक कार्यशालाएं आयोजित की जाती हैं। इसमें ओलंपियाड में शामिल होने के इच्छुक राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के सभी छात्र भाग ले सकते हैं। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों की इस प्रकार की पृष्ठभूमि तैयार करना है जो ऐसे अंतर्राष्ट्रीय ओलंपियाड के लिए आवश्यक हो।

कुछ विद्यार्थी इंटेल विज्ञान मेले के लिए अपनी परियोजना पर प्लूटोनियम में कार्य कर रहे हैं। अगले वर्ष और अधिक विद्यार्थियों के भाग लेने की उम्मीद है क्योंकि इंटेल विज्ञान मेले के अधिकारियों ने तारामंडल से अनुरोध किया है कि इन मेलों में भाग लेने वाले विद्यार्थियों के लिए यहां का संसाधन उपलब्ध कराया जाय।

प्लैनेटरी सोसाइटी तथा नासा द्वारा आयोजित विद्यार्थियों की अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता 'रेड रोवर गोस टू मार्स' में प्रतिभागी के रुप में लगभग 600 विद्यार्थियों ने नेहरु तारामंडल में पंजीकरण कराया है। इस प्रतियोगिता में शामिल होने वाले विद्यार्थियों को प्रस्तावित मार्स सर्वेयर 2003 के बोर्ड पर स्थित कुछ निश्चित उपकरणों के द्वारा मंगल पर किए जाने वाले सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक कार्य पर एक निबंध लिखना होगा। यह विद्यार्थियों के लिए आम तौर पर आयोजित होने वाली प्रतियोगिताओं से कुछ अलग है तथा इसके लिए मंगल पर चल रहे प्रमुख अनुसंधान कार्यों की समझ होना आवश्यक है।

इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को पूर्ण रुप से तैयार करने के लिए दो महीने से अधिक समय तक लगातार कार्यशालाएं आयोजित की गयीं। इन कार्यशालाओं में मंगल ग्रह के विज्ञान तथा मंगल ग्रह पर भेजे गए पूर्व अभियानों वाइकिंग लैंडर्स तथा पाथफाइंडर के परिणामों के बारे में विद्यार्थियों को जानकारी दी गयी। स्टूडेंट नेविगेटर कांटेस्ट नाम की एक अनुवर्ती परियोजना भी सफलतापूर्वक पूरी कर ली गयी है। इसमें विद्यार्थियों ने मंगल अन्वेषण उपकरणों के मॉडल के साथ काम किया तथा अपने अनुवर्ती कार्यों की डायरी प्रस्तुत की।

एमेच्योर एस्ट्रोनॉमर्स एसोसिएशन, दिल्ली तथा तारामंडल के बीच कई वर्षों से काफी उर्वर व सहयोगी संबंध रहा है। इस संस्था के कई उत्साही सदस्य तारामंडल की विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियों तथा जन कार्यक्रमों में सहयोग करते रहे हैं। इसके बदले में तारामंडल संस्था के सदस्यों को उनकी गतिविधियों के लिए विविध सुविधाएं प्रदान करता है। हर रविवार को तारामंडल के स्काई थिएटर में एमेच्योर की बैठक होती है जहां वे नए सदस्यों को अंतरिक्ष से परिचित कराते हैं तथा परस्पर रुचि के विषयों पर चर्चा व व्याख्यान आयोजित करते हैं। उन्होंने दूरदर्शी निर्माण के लिए उपकरणों तथा दूरदर्शी के लिए ट्रैकिंग ड्राइव बनाने के लिए अपने सदस्यों में पर्याप्त कौशल विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं।

ऐसा भी समय आता है जब आकाश पुकारता है और तारामंडल को उसका जवाब देना होता है। इनमें सबसे उत्साहजनक समय तब होता है जब पूर्ण सूर्यग्रहण की स्थिति आती है। इन सभी दुर्लभ घटनाओं का एक ही स्थान से अवलोकन किया जा सकता है। कुछ अन्य घटनाएं जैसे सक्रिय उल्का वृष्टि, चंद्र ग्रहण, ग्रहीय संयोजन, ग्रहों का पास–पास आना अथवा तारों का चमकना आदि सभी घटनाएं तारामंडल में देखी जा सकती है। जो लोग आकाश की घटनाओं से अपरिचित होते हैं उनके लिए इन घटनाओं की व्याख्या भी की जाती है तथा यह प्रयास किया जाता है तारामंडल में उपस्थित उपकरणों के द्वारा उन घटनाओं को जनता को दिखाया जाय। हाल में अंतरिक्ष में इसी प्रकार की एक विस्मयकारी घटना हुई। विगत वर्ष शनि अपने 33 वर्ष के चक्रीय पथ में पहली बार चंद्रमा के करीब से गुजरा जिसके कारण शनि के चांद के निकट आने की पुनरावृति हुई। शाम की आकाश में दिखने वाले ग्रहों के समूह राजधानी की जनता के लिए काफी कौतूहल पूर्ण होते हैं। तारामंडल अपने दूरदर्शी के द्वारा इन ग्रह, नक्षत्रों को दिखा कर लोगों की ज्ञान श्रुधा की पूर्ति करता है।

तारामंडल याहू समूह के वेबसाइट http://groups.yahoo.com/group/nehruplanetarium के संचालक के रुप में कार्य कर रहा है। खगोल विज्ञान पर चर्चा के लिए यह एक भागीदारी समूह है। कोई भी व्यक्ति इस पर खगोल विज्ञान से संबंधित कोई भी प्रश्न पूछ सकता है तथा इसका उत्तर समूह के किसी भी सदस्य, तारामंडल के मॉनिटर व कार्यक्रम के संचालकों द्वारा दिया जा सकता है।

*डा. रत्नाश्रीः एक नक्षत्र विज्ञानी एवं निदेशक, नेहरू तारामंडल, तीनमूर्ति भवन, नई दिल्ली 110011

•••

डॉ. एस.जेड. कासिम के साथ भेंटवार्ता

सुविख्यात समुद्र विज्ञानी डॉ. सैयद ज़हूर क़ासिम, बर्फीले अंटार्कटिका महाद्वीप के प्रथम भारतीय अभियान के मुख्य रचियता और दल के नेता थे। यह अभियान काफी समय तक वैज्ञानिकों की रुचि का विषय बना रहा था। इस दूरस्थ और कठिन महाद्वीप पर प्रथम भारतीय दल के पहुंचने के बीस वर्ष बाद, ड्रीम 2047 को एक भेंट वार्ता में डॉ. कासिम ने अन्टार्कटिका के अपने अनुभव स्मरण करते हुए बताया कि भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधान के इतिहास में, कैसे अंटार्कटिक कार्यक्रम ने एक नये अध्याय की शुरुआत की। प्रस्तुत है भेंटवार्ता के अंश।

ड्रीम 2047 : *डॉ. कासिम, आपने 1981 में भारत के पहले अंटार्कटिका अभियान का नेतृत्व किया था। आपकी नजर में भारत जैसे देश के लिए अंटार्कटिक कार्यक्रम का क्या महत्व है?*

डॉ. कासिम : पहले अंटार्कटिका अभियान को जब अंतिम रूप दिया गया था, उस समय अंटार्कटिका के बारे में दुनिया में परिदृश्य आज की तुलना में काफी भिन्न था। तब अंटार्कटिका पर धनी व विकसित देशों का एकाधिकार था। अंटार्कटिका तक केवल दो विकासशील देशों अर्जेंटीना व चिली की पहुंच ही हो पायी थी, क्योंकि वे इस बर्फीले महाद्वीप के निकट स्थित हैं। अंटार्कटिका में भारत के प्रवेश ने इस एकाधिकार को खत्म किया। भारत अंटार्कटिका तक पहुंचने वाला एशिया का पहला देश तथा सबसे प्रमुख विकासशील देशों में से एक था। भारत के अंटार्कटिका तक पहुंचने के बाद शीघ्र ही ब्राजील, चीन तथा दक्षिण कोरिया ने अंटार्कटिका तक पहुंचने का प्रयास किया और उन्हें वहां अपना केंद्र स्थापित करने में सफलता भी मिली। हमारे अंटार्कटिक कार्यक्रम के पीछे मुख्य तर्काधार भूराजनैतिक था तथा दूसरा, भारत के लिए एक नये विज्ञान–ध्रुवीय विज्ञान का द्वारा खोलना था। अंटार्कटिका के पहले अभियान के पूर्व भारत मे ध्रुवीय विज्ञान का अस्तित्व नहीं था।

ड्रीम 2047 : *यह अभियान हिमालय की ऊंचाई पर स्थित हमारे हिमानियों को बेहतर ढंग से समझने में किस तरह मददगार होगा?*

डॉ. कासिम : हिमालय की हिमानियों तथा अंटार्कटिका की हिमानियों के बीच एक बहुत प्रमुख अंतर है। अंटार्कटिका में, हिमानियों से विगत हजारों वर्षों के दौरान पृथ्वी में क्या घटित हुआ इसका इतिहास पता चलता है क्योंकि सतह के नीचे 100 मीटर या उससे अधिक गहराई की आंतरिक चट्टान के नमूने से भूतकाल की कई वस्तुएं प्राप्त की जा सकती हैं। हिमालय जैसी नवीनतम पर्वत–श्रेणी की हिमानियों तथा अंटार्कटिका की हिमानियों की तुलना करने पर हिमालयी हिमानियों का भूवैज्ञानिक इतिहास तथा दोनों के बीच अंतर से इनकी प्राचीनता का पता चल सकता है। जो कुछ भी इन दोनों क्षेत्रों की बर्फ में दबा पड़ा है उसके एक तुलनात्मक अध्ययन से हिमालय तथा पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों के भूवैज्ञानिक इतिहास के कई पहलू उद्घाटित हो सकते हैं।

डॉ. एस.जेड. कासिम

डॉ. सैयद जहूर कासिम 1991 से 1996 तक योजना आयोग के सदस्य (विज्ञान व प्रौद्योगिकी) रहे हैं।

उन्होंने वेल्स विश्वविद्यालय (यू.के.) से समुद्र विज्ञान में पी.एचडी व डी.एससी डिग्री प्राप्त किया है। एक समुद्र विज्ञानी के रूप में उन्होंने कई संस्थाओं तथा क्षेत्रों में अपना योगदान दिया है तथा राष्ट्रीय महासागर विज्ञान संस्थान, गोवा सहित कई संस्थाओं के निदेशक रहे हैं। 1981 से 1988 तक वह भारत सरकार के पर्यावरण विभाग के प्रथम सचिव तथा महासागर विकास विभाग के प्रथम सचिव रहे हैं। उन्होंने भारतीय अंटार्कटिक कार्यक्रम की शुरुआत की थी तथा 1981–82 में पहले अंटार्कटिक अभियान का नेतृत्व किया था।

उन्होंने 8 किताबें लिखीं/संपादित कीं हैं तथा प्रतिष्ठित राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय जर्नलों में उनके 250 से अधिक वैज्ञानिक पेपर प्रकाशित हुए हैं। उन्हें भारत की सभी राष्ट्रीय अकादमियों का फेलो चुना गया है तथा वह आईआईटी, मद्रास सहित छह भारतीय विश्वविद्यालयों में मानद प्रोफेसर हैं। वह जामिया मिलिया केंद्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति रहे हैं। उन्हें बनारस हिंदू विश्वविद्यालय सहित चार विश्वविद्यालयों से डी.एससी की मानद उपाधि प्राप्त हुई है। वह राष्ट्रीय महासागर विज्ञान संस्थान, गोवा के चेयरमैन तथा कई अन्य वैज्ञानिक संस्थाओं के अध्यक्ष/चेयरमैन रह चुके हैं। डॉ कासिम 1992–93 के लिए भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए थे। उनके सुविख्यात योगदान तथा विशिष्ट सेवाओं को व्यापक स्वीकृति मिली है तथा कई राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों–सम्मान के अलावा उन्हें भारत सरकार द्वारा 1974 में पद्मश्री तथा 1982 में पद्म भूषण सम्मान से विभूषित किया गया। अप्रैल 1999 में सिंगापुर में उन्हें ब्रिटेन की संस्था ओसनोग्राफी इंटरनेशनल द्वारा प्रतिष्ठित लाइफ टाइम अचीवमेंट पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

वह सम्प्रति भारतीय महासागर विज्ञान अध्ययन सोसाइटी, सेकुलर हाउस, 1, अरुणा आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110067 के वाइस–चेयरमैन हैं।

ड्रीम 2047 : *अंटार्कटिक कार्यक्रम, जो अब नियमित विशेषता बन चुके हैं, बहुविषयक रवैए के हैं। क्या आप हमें बता सकते हैं कि अनुसंधान व विकास के संदर्भ में इन अभियानों की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?*

डॉ. कासिम : वास्तव में अंटार्कटिक कार्यक्रमों से हमें कई महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। अंटार्कटिका के हमारे स्थायी केंद्र में हमारे वैज्ञानिक दल के सदस्य वर्षभर, यहां तक कि जाड़े में भी वहां रहते हैं। इनके द्वारा हमें अंटार्कटिका के मौसम चक्र से संबंधित संकेत प्राप्त होते हैं। अंटार्कटिक कार्यक्रम की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता चीन तथा पाकिस्तान सीमा पर अत्यंत ठंडे मौसम का सामना कर रहे हमारे जवानों को अंटार्कटिका भेजकर ठंडे जलवायु तथा कन्टेनर के अंदर रहना, ठंडी दशाओं में रहना, कपड़े, भोजन तथा अन्य उपयोगी विशेषताओं का आदी बनाना है। अंटार्कटिक कार्यक्रम भौतिकी, रसायनशास्त्र, भूविज्ञान, जीवविज्ञान, जहाजरानी, शल्यकर्म आदि कई क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण है। इन क्षेत्रों में वैज्ञानिकों द्वारा अंटार्कटिका में जो अनुसंधान किए गए हैं वे पूर्णतया मौलिक हैं अतः भारत के लिए काफी महत्वपूर्ण हैं।

''दक्षिण गंगोत्री'' भारत का पहला स्थायी केंद्र था जो सात वर्ष तक टिका रहा तथा इस दौरान यह बर्फ के नीचे दफन था, बाद में इसका उपयोग गर्मी के अड्डे के रूप में किया गया। अब हमारे देश ने सभी मौसम में कार्य करने योग्य एक केंद्र ''मैत्री'' का निर्माण कर लिया है, जो एक बर्फ रहित पहाड़ी क्षेत्र में स्थित है। यह वर्ष भर कार्य करता है। यह मेरे कार्यभार ग्रहण करने से पूर्व 1988 में ही निर्मित हो चुका था और तब से अब तक के 14 वर्षों में यह सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। यह शत प्रतिशत भारतीय डिजाइन पर आधारित है तथा पूरी तरह भारतीय प्रौद्योगिकी तथा मानव संसाधन द्वारा निर्मित किया गया है।

ड्रीम 2047 : *भूमंडलीय जलवायु संबंधी प्रणाली को अंटार्कटिका व आर्कटिक किस तरह प्रभावित करते हैं? क्या हम इसका पता लगाने के लिए कोई अध्ययन कर रहे हैं।*

डॉ. कासिम : पहले मैं स्पष्ट करना चाहूंगा कि आर्कटिक में पायी जाने वाली बर्फ अंटार्कटिका में पायी जाने वाली बर्फ से काफी अलग है। आर्कटिक में बर्फ के नीचे भूमि नहीं है तथा यह निरंतर तैरती रहती है। पनडुब्बियां इस बर्फ के नीचे से आराम से गुजर सकती हैं। दूसरी तरफ, अंटार्कटिका में 2–3 प्रतिशत तक भूमि बर्फ रहित है। इसका मतलब यह है कि यदि हम जमीन को खोदें तो नीचे हमें बर्फ मिलेगी। अब मैं भूमंडलीय जलवायु के मुद्दे पर आता हूं, यदि आर्कटिक व अंटार्कटिक महासागर में इतना अधिक बर्फ होता तो दुनिया की जलवायु आज की तुलना में काफी अलग होती। ग्रीन हाउस गैसों के अत्यधिक उत्सर्जन से बढ़ते भूमंडलीय ताप के बारे में दुनिया भर में काफी आशंकाएं व्याप्त हैं। भूमंडलीय तापन से ध्रुवीय क्षेत्रों की बर्फ पिघल सकती है तथा इसके समुद्र की सतह ऊंची हो सकती है। इससे पृथ्वी की जलवायु तथा इसकी भू–आकृति विज्ञान पर विध्वंसक प्रभाव पड़ने की आशंका व्यक्त की जा रही है।

ड्रीम 2047 : *अंटार्कटिका अभियान/अनुसंधान का क्या कोई आर्थिक निहितार्थ/लाभ है?*

डॉ. कासिम : जैसा कि पहले बता चुका हूं, अंटार्कटिका कार्यक्रम का सबसे अधिक फायदा हमारे रक्षा बलों को होगा। इसका दूसरा पहलू हमारे देश में एक नए विज्ञान–ध्रुवीय विज्ञान की शुरुआत है। 1982 में जब हमने अंटार्कटिका में प्रवेश किया तो उस समय तक देश में शायद ही कोई ऐसी संस्था थी जो ध्रुवीय विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य कर रही हो। अब 30 से अधिक संस्थाएं अंटार्कटिका से प्राप्त नमूनों व आंकड़ों पर आधारित अनुसंधान कार्य कर रही हैं। अंटार्कटिका कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इससे एक दुर्गम महाद्वीप तक पहुंचने की हमारे देश की क्षमता प्रदर्शित हुई। भारत ने वहां एक स्थायी केंद्र स्थापित किया तथा अनुसंधान कार्य शुरू किया, इससे दुनिया भर में इसकी क्षमता को स्वीकार किया गया।

ड्रीम 2047 : *क्या आप अपने नेतृत्व में गए अंटार्कटिका अभियान के कुछ व्यक्तिगत अनुभव हमें बताएंगे?*

डॉ. कासिम : तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा भारत के पहले अंटार्कटिका अभियान के नेतृत्व के लिए मुझे चुनना, मेरे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अवसर था। समुद्र विज्ञान अनुसंधान में मेरे व्यापक अनुभव तथा हिन्द महासागर के बारे में जानकारी को देखते हुए ही शायद मुझे नेतृत्व के लिए चुना गया था। अभियान को अंतिम रूप देने से पहले श्रीमती इंदिरा गांधी ने मुझसे केवल एक सवाल किया था : ''क्या भारत अंटार्कटिका तक पहुंच सकता है?'' मैंने सकारात्मक जवाब दिया ' ''यह बिल्कुल संभव है मैडम, बशर्ते कि हमारे पास सही ढंग का बर्फ तोड़ सकने वाला जहाज तथा कुछ आवश्यक उपकरण हों।'' यह पहले अभियान का प्राथमिक चरण था और मैं प्रधानमंत्री से किए गए अपने वायदे के मुताबिक अंटार्कटिका पहुंचने के लिए कटिबद्ध था, चाहे कुछ भी हो जाय। हमें अपने लक्ष्य का पता नहीं था। अतः अंटार्कटिका में प्रवेश करने के लिए हिमखंडों तथा जमें हुए समुद्र के बीच भटकना पड़ा। अंटार्कटिका में प्रवेश के हमारे तीन प्रयास असफल हो गए और चौथे प्रयास में ऊपर से एक हेलीकॉप्टर द्वारा हमें रास्ता दिखाया गया, तब जाकर हम अंटार्कटिका तक पहुंचने में कामयाब हुए। अंटार्कटिका पर कदम रखने के बाद दल का हर सदस्य विजय व सफलता की भावना से ओत–प्रोत था। यह एक अलग तरह का अनुभव था। शीघ्र ही हमने अंटार्कटिका से भारत के बीच संचार कायम कर लिया और इस समय प्रधानमंत्री से बात करना मेरे जीवन की सबसे बड़ी खुशी थी। प्रधानमंत्री ने हम सबको बधाई दी तथा वे हमारी सफलता से काफी आह्लादित थीं।

ड्रीम 2047 : *समुद्र विज्ञान अब भारत सरकार के लिए सक्रिय अनुसंधान का क्षेत्र बन चुका है। भारत में समुद्र विज्ञान अनुसंधान के प्रमुख प्रणोद क्षेत्र क्या हैं?*

डॉ. कासिम : समुद्र विज्ञान तुलनात्मक रूप से भारत के लिए एक नया विज्ञान है। यह अपनी प्रकृति में बहुआयामी है तथा इसके अंदर भौतिकी, रसायनशास्त्र, भू–विज्ञान, जीव विज्ञान, शल्यकर्म अभियांत्रिकी, आंकड़ों का कंप्यूटरीकरण आदि सभी विज्ञान समाहित हैं। भारत में समुद्र विज्ञान की शुरुआत 1960 में हुई थी, जब हमने इंटरनेशनल इंडियन ओसन एक्सपिडिशन (आईआईओई) नामक पहले अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम की शुरुआत की थी। इस कार्यक्रम में 20 से अधिक देशों ने भागीदारी की थी विभिन्न देशों ने कई जहाजों के द्वारा हिंद महासागर का अध्ययन किया गया था। भारत ने कई जहाजों की मेजबानी तथा इस कार्यक्रम में सक्रिय रूप से भागीदारी की। आईआईओई कार्यक्रम 1965 में खत्म हो गया। इसके बाद जनवरी 1966 में समुद्र विज्ञान अध्ययन के लिए राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान (एनआईओ) नामक एक संस्थान का उदय हुआ। इस संस्थान की रूपरेखा 1963–64) में ही स्वर्गीय प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू द्वारा निर्धारित की गयी थी। वास्तव में यह उनका ही सुझाव था कि हमारे देश में एक ऐसा संस्थान होना चाहिए जो वर्षभर पूरी तरह समुद्र विज्ञान अनुसंधान के प्रति समर्पित हो। विगत चार दशकों में समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में हमारे देश में काफी अच्छा कार्य हुआ है तथा एनआईओ को दुनिया के सातवें सबसे अच्छे समुद्र विज्ञान संस्थान का दर्जा हासिल हुआ है। 1993–94 में चेन्नई में राष्ट्रीय समुद्र प्रौद्योगिकी संस्थान नामक एक और संस्थान की स्थापना हुई जिसका कार्य समुद्र विज्ञान के क्षेत्र में प्रायोगिक अनुसंधान कार्य करना था।

ड्रीम 2047 : *भारत द्वारा बहुधात्विक पिंडों के अन्वेषण हेतु परियोजन शुरू करने में राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान के निदेशक के रूप में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दुर्भाग्य से, आज तक इस कार्यक्रम से कोई ठोस उपलब्धि हासिल नहीं हो सकी है। इसका क्या कारण है?*

डॉ. कासिम : यह कहना सही नहीं है कि बहुधात्विक पिंडों के अन्वेषण कार्यक्रम से कुछ ऐसा हासिल नहीं हो सका क्योंकि हमने केंद्रीय हिंद महासागर में खनन क्षेत्र की पहचान करने में यथेष्ट प्रगति की है। केंद्रीय हिंद महासागर में भारत को एक स्थल आवंटित कर दिया गया है तथा भारत ऐसा पहला देश है जिसे संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय समुद्र तल अधिकरण द्वारा हिंद महासागर में स्थल आबंटित हुआ। धात्विक पिंडों के अन्वेषण में देरी मुख्यतः आर्थिक कारणों से हो रही है। अफ्रीकी व लातिन अमेरिकी देशों में बहुधात्विक पिंडों के रूप में भारी यात्रा में सामरिक धातु संस्थान मौजूद है। इनकी अर्थव्यवस्था इन धातुओं के निर्यात पर निर्भर है, जिसके कारण इन देशों ने विश्व बाजार में भारी मात्रा में इन धातुओं की खेप जारी कर दी है। पहले यह अनुमान लगाया गया था कि 2005 तक सामरिक महत्व की धातुओं (Cu, Ni तथा Co) की कमी हो जाएगी तथा हमें समुद्र के बहुधात्विक पिंडों पर निर्भर होना पड़ेगा। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं हुआ। इस कारण ही अमेरिका, फ्रांस, जापान, जर्मनी तथा ब्रिटेन जैसे विकसित देशों ने भी बहुधात्विक पिंडों के अन्वेषण तथा उनसे धातुओं के निष्कर्षण की प्रौद्योगिकी मौजूद रहने के बावजूद इन पिंडों से उत्पादन कार्य नहीं शुरू किया। भारत भी इसी तरह की स्थिति का सामना कर रहा है। जैसे ही इन धातुओं की कमी दिखेगी दुनिया भर में बहुधात्विक पिंडों के अन्वेषण

का कार्यक्रम जोर–शोर से शुरू हो जाएगा।

ड्रीम 2047 : *देर से ही सही, समुद्र की गहराई में दबे हाइड्रोजन ऊर्जा के प्रमुख स्रोत मीथेन हाइड्रेट के प्रति कुछ रुचि दिखायी दे रही है। क्या भारत की समुद्र में मौजूद मीथेन हाइड्रेट के अन्वेषण व दोहन में रुचि ले रहा है?*

डॉ. कासिम : आपका कहना सही है, दुनिया भर में गैस हाइड्रेट, विशेषकर मीथेन हाइड्रेट के बारे में जो भविष्य का एक महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत होगा, व्यावसायिक रुझान बढ़ रहा है। अब तक किसी भी देश में हाइड्रेट भंडार का व्यावसायिक दोहन शुरू नहीं हुआ है, हालांकि कई देशों में इस दिशा में सक्रिय प्रयास चल रहे हैं। भारत में भी इसी तरह की स्थिति है। एनआईओ के वैज्ञानिकों ने भारत के विशेष आर्थिक क्षेत्र (ईईज़ेड) के अंदर कई संभावित मीथेन हाइड्रेट भंडारों की खोज की है।

ड्रीम 2047 : *दवा कंपनियों तथा चिकित्सीय अनुसंधानकर्ताओं ने समुद्री संसाधनों से सक्रिय रासायनिक यौगिकों के विकास के लिए कई बड़े कार्यक्रमों की शुरुआत की है। क्या भविष्य की दवाओं व औषधियों के लिए महासागर एक प्रमुख स्रोत साबित हो सकते हैं?*

डॉ. कासिम : समुद्र से दवाएं प्रापत करने के संबंध में भारत में कई संस्थाएं अनुसंधान संस्थान (सीडीआरआई), लखनऊ, भारतीय जैव रसायन संस्थान (आईआईसीबी), कोलकाता तथा अन्य कई संस्थाएं इस दिशा में कार्य कर रही हैं। यह उम्मीद की जा रही है कि समुद्री संसाधनों से कुछ नयी दवाइयां प्राप्त की जा सकेंगी। अमेरिकी बाजारों में समुद्री स्रोतों से निर्मित कुछ दवाइयां उपलब्ध हो चुकी हैं। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भविष्य के दवा उद्योग के लिए समुद्र एक प्रमुख स्रोत होगा।

ड्रीम 2047 : *योजना आयोग के विज्ञान व प्रौद्योगिकी सदस्य के रूप में आप भारत सरकार की विज्ञान व प्रौद्योगिकी नीति निर्माण में गहराई से जुड़े रहे हैं। भारत में वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकीय अनुसंधान की वर्तमान स्थिति के बारे में आपका क्या नजरिया है?*

डॉ. कासिम : भारत में विज्ञान व प्रौद्योगिकी के भविष्य के प्रति मैं पूर्णतया आशान्वित हूं। वास्तव में योजना आयोग का सदस्य बनने के पूर्व भी मेरा ऐसा ही विश्वास रहा है। सिर्फ एक बिंदु पर ध्यान देना चाहिए कि यद्यपि हमारे देश ने विज्ञान व प्रौद्योगिकी के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति की है तथा हमारे कुछ वैज्ञानिक व अभियंता दुनियाभर में सर्वश्रेष्ठ हैं, फिर भी यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम विज्ञान व प्रौद्योगिकी को सामाजिक परिवर्तन लाने का साधन नहीं बना सके हैं। अब जाकर हमने देश में गरीबी निवारण के लिए विज्ञान व प्रौद्योगिकी को आधार बनाने के बारे में गंभीरता से सोचना शुरू किया है। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के उपयोग के द्वारा हम देश की जनता का जीवन स्तर सुधार सकते हैं (स्वास्थ्य, दीर्घ आयु, पर्यावरण इतयादि क्षेत्रों में)।

ड्रीम 2047 : *कई लोग देश में विज्ञान शिक्षा की गुणवत्ता पर अफसोस व्यक्त करते हैं। आपका क्या कहना है?*

डॉ कासिम : मेरा मानना है कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का आधार मजबूत करने का बस एक ही तरीका है कि स्कूलों, कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में उच्च गुणवत्ता की विज्ञान शिक्षा प्रदान की जाय। दुर्भाग्य से, शिक्षा के लिए उपलब्ध वित्तीय परिव्यय काफी कम है। विभिन्न स्तरों पर विज्ञान शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने हेतु बहुत अधिक प्रयास की जरूरत है।

ड्रीम 2047 : *विज्ञान व प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने में भी आपकी रुचि रही है। आपके विचार से आम जनता में वैज्ञानिक सूचनाओं का प्रसार तथा वैज्ञानिक सोच का विकास किस प्रकार किया जा सकता है?*

डॉ. कासिम : समूचे देश में वैज्ञानिक सोच के विकास के लिए विज्ञान व प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाना सबसे प्रमुख तत्व है। वर्तमान समय में शहरी क्षेत्रों में काफी हद तक वैज्ञानिक जागरुकता कायम हो चुकी है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में हमे विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की दिशा में काफी कार्य करना है। विज्ञान व प्रौद्योगिकी के बुनियादी तत्वों के बारे में जागरूकता के बिना मानव स्वास्थ्य व पर्यावरण में सुधार के कार्यक्रम सफल नहीं हो सकते। विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) तथा अन्य संस्थाओं जैसे इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, विशेषकर आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के सराहनीय कार्यों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में भी धीरे–धीरे विज्ञान के बारे में जागरूकता बढ़ रही है। लेकिन वैज्ञानिक सोच के विकास के लिए अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है।

ड्रीम 2047 : *नयी पीढ़ी को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?*

डॉ. कासिम : नयी पीढ़ी को निश्चित रूप से पुरानी पीढ़ी की तुलना में मानसिक, भावनात्मक, साथ ही साथ शैक्षिक रूप से बेहतर सुविधाएं प्राप्त हैं। नए पाठ्यक्रमों में विज्ञान व प्रौद्योगिकी तथा पर्यावरण से जुड़े महत्वपूर्ण तत्व शामिल हैं। नयी पीढ़ी को मेरा यही संदेश है कि वे इस पर विचार करें कि विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्राप्त जानकारियां लोगों का जीवन स्तर सुधारने में किस प्रकार मददगार हो सकती हैं। सभी मानवीय उद्यमों के क्षेत्र में देश के भविष्य को आकार देने में नयी पीढ़ी मददगार होगी। मैं उनकी पूर्ण सफलता की कामना करता हूं।

टी.वी. जयन

•••

संपादक के नाम पत्र

इस छोटी सी पत्रिका में इतनी उत्कृष्ट एवं उच्चस्तरीय जानकारी के लिए सर्वप्रथम बधाई स्वीकारें। विज्ञान का इतना सुगम प्रस्तुतिकरण अपने आप में एक अनूठा प्रयास एवं उदाहरण है। ड्रीम 2047 – हिन्दी, अंग्रेजी या दानों? एक पाठक के नाते मेरा विचार है कि यह पत्रिका अपने मूल रूप में ही अच्छी है। इसे दोनों भाषाओं में संयुक्त रूप से प्रकाशित करने से हिन्दी भाषियों को ज्यादा लाभ मिलता है। वे एक तरफ जहां हिन्दी में इसे आसानी से समझ जाते हैं, वहीं अंग्रेजी में वे कई 'पदों' की जानकारी उससे प्राप्त कर लेते हैं। आशा है यह पत्रिका अधिकाधिक लोगों तक पहुंचेगी।

के.वि. दमाना, लाले–दा–बाग
पो. संग्रामपुर, वाया–तालाब तिल्लो, जम्मू –180002

विज्ञान प्रसार की मासिक पत्रिका ड्रीम 2047 गत दो वर्षों से हमारे विद्यालय में आ रही है। जिससे विद्यालय के विद्यार्थी एवं अध्यापक विज्ञान के विषय में लाभान्वित हुए हैं। इससे विज्ञान की नई–नई जानकारियां आदि प्राप्त हुई हैं।

अजय कुमार अवस्थी, प्रधानाचार्य
मुखराम बौहरिया सरस्वती बाल मन्दिर, नजफगढ़, दिल्ली–43

प्रगति मैदान दिल्ली पुस्तक मेले से ड्रीम 2047 का फरवरी 2002 अंक प्राप्त हुआ जिसमें इस देश के महान वैज्ञानिक चन्द्रशेखर वेंकट रामन के विषय में पढ़ने को मिला और ऐसा लगा कि जैसे कि सी.वी. रामन जी ने सभी विदेशी/देशी सुख सुविधाओं को त्यागकर देश की प्रगति के लिए विज्ञान को बढावा दिया। वो देश की प्रगति में एक मील का पत्थर साबित हुआ। ऐसे ही कर्मवीरों को यह देश नतमस्तक है और इस आर्थिक चकाचौंध के युग में ड्रीम 2047 निशुल्क प्रकाशित करके देश को विज्ञान के प्रति जागरूक करने के महान कार्य रूपी यज्ञ में बहुत बड़ी आहुति दी है, जिसके लिए आप भी बधाई के पात्र हैं।

मुकेश कुमार बाल्मीकि, सदस्य, क्षेत्र पंचायत बागपत

गोपाल चन्द्र भट्टाचार्य

जिसने कीट–पतंगों का अवलोकन किया

अमित चक्रवर्ती*

चींटी और मधुमक्खी जगत में, रानी की स्थिति अद्वितीय होती है। वह कामगारों एवं सैनिकों को पैदा करती है। रानियों की अनुपस्थिति में एक विशेष प्रकार के खाद्य 'रॉयल जेली' का भोजन करने वाली मधुमक्खी के लार्वा के रानी के रूप में विकसित होने की आशा होती है। अन्यथा, वे कामगारों में बदल जाते हैं। इसी प्रकार की घटना का अवलोकन चींटियों में सर्वप्रथम एक अज्ञात भारतीय कीटविज्ञानी गोपाल चंद्र भट्टाचार्य ने 1940 के दशक में किया था। इस उत्सुक अवलोकनकर्ता ने *ओकोफीलिया* नामक चींटियों के एक भारतीय प्रकार का अवलोकन किया। उन्होंने चींटियों को पारदर्शी सेलोफान से घोसला बनाने के लिए प्रेरित किया ताकि वे उनकी गतिविधियों को चुपचाप देख सकें तथा यह नोटिस कर सकें कि नहयी पल्लवित पत्तियों एवं कलियों से बना सिर्फ एक विशेष भोजन ही रानियों के निर्माण को प्रेरित करता है। यह उल्लेखनीय निष्कर्ष कोलकाता के बोस इंस्टीट्यूट के 'ट्रांजेक्संस' में प्रकाशित हुआ था। दुर्भाग्यवश द्वितीय विश्व युद्ध के कारण यह पत्रिका (जर्नल) विदेशों में अच्छी तरह वितरित नहीं हो पायी और गोपाल चंद्र का यह काम पश्चिम के लिए अज्ञात ही रहा।

गोपाल चन्द्र भट्टाचार्य

गोपाल चन्द्र भट्टाचार्य का जन्म 1 अगसत, 1895 को फरीदपुर जिले (अब बांग्लादेश में) के एक सुदूरवर्ती गांव लोनसिंग में हुआ था। उनके पिता गांव के पुजारी थे, जिनकी असामयिक मृत्यु ने चार वर्ष के बालक को अपने परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए अपने पिता के व्यवसाय को अपनाने के लिए बाध्य कर दिया। इसके बावजूद उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा जारी रखी और मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी के साथ पास की। हालांकि, उनकी वित्तीय स्थिति ने शैक्षणिक कैरियर को छोड़ने के लिए बाध्य किया। फलतः उन्होंने अपने परिवार का खर्च चलाने हेतु एक स्कूल शिक्षक की नौकरी की।

गोपाल चन्द्र बचपन से ही प्रकृति का अवलोकन करते थे। उन्होंने 'जैव–प्रदीप्ति' पर एक आलेख लिखा जो उस समय की प्रसिद्ध बांग्ला पत्रिका 'प्रबाशी' में प्रकाशित हुआ। इस आलेख ने सर जे.सी. बोस का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने गोपला चंद्र को अपने बोस इंस्टीट्यूट में नौकरी का प्रस्ताव दिया, जो उनके कैरियर में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। उन्होंने इंस्टीट्यूट में एक सहायक के रूप में कार्यभार ग्रहण किया तथा उपकरण रिपेयर, ड्राईंग आदि जैसे अलग तरह के काम भी किये। हालांकि कुछ ही दिनों के अंदर उनको अपना अनुसंधान प्रारंभ करने की अनुमति दे दी गयी। स्वयं जे.सी. बोस ने उनको कीटविज्ञान के क्षेत्र में काम करने के लिए निर्देश दिया।

गोपाल चंद्र ने चींटियों, मकड़ियों और बैंगचियों आदि विभिन्न कीटों के व्यवहार का अवलोकन करना प्रारंभ किया। वे एक कुशल फोटोग्राफर थे। वे मछलियों या यहां तक कि छोटे चमगादड़ों का शिकार करती मकड़ियों का फोटो खींच सकते थे। अपने अवलोकन पर आधारित वे बांग्ला में लोकप्रिय आलेख लिखते रहते थे, जिनका प्रकाशन प्रो. एस.एन. बोस द्वारा स्थापित भारत में अपनी तरह की एकमात्र पत्रिका **'ज्ञान–ओ–विज्ञान'** जैसी लोकप्रिय विज्ञान पत्रिकाओं में होता था।

लम्बे समय तक यह विश्वास किया जाता था कि मनुष्य उपकरणों को बनाने और उनका इस्तेमाल करने वाला एकमात्र प्राणी है। 19वीं शताब्दी में यह पता चला कि तंजानिया में चिम्पांजी उपकरण एवं हथियारों का प्रयोग करते हैं। अपने भोजन की तलाश में, वे पेड़ों के खोखले तने को छड़ी से ठकठकाते थे, दीमकों द्वारा किये गये सूराखों में घास–फूस या टहनियां कोंचते थे और वे उनके साथ चिपककर आये कीटों को खाते थे। इस उद्देश्य के लिए वे कभी–कभी टहनियों को तैयार करते थे, जो वास्तव में उपकरण होते थे। कुछ निश्चित प्रकार के चिम्पांजी अपने दुश्मनों पर आक्रमण करते हैं और दो मीटर लम्बी शाखाओं से उनको मारते हैं। स्विस जंतुविज्ञानियों ने हाल ही में यह खोज की है कि इस प्रकार के एंथ्रोपॉइड (मानवाकार) बंदर कठोर वस्तुओं से काष्ठफल को तोड़ते हैं। इस प्रकार का व्यवहार कुछ निश्चित पक्षियों में भी पाया जाता है। जब एक इजिप्टियन गिद्ध ने शुतरमुर्ग के अंडे को अकेले पाया, तो उसने एक पत्थर उठाया और उस अंडे पर तब तक प्रहार करता रहा जब तक कि उसका कठोर आवरण टूट न गया। हम लोगों ने गोपाल चंद्र भट्टाचार्य से यह सीखा है कि निम्न कोटि का कीट भी एक उपकरण उपयोगकर्ता होता है। उन्होंने देखा कि शिकारी ततैया पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़ों को कसकर पकड़ता है और उससे घोंसले के सुराख को बंद करता है। उन्होंने कनखजूरे की रुचिकर विशेषता की भी खोज की, जो उनके अंड़ों की सुरक्षा के संबंध में विख्यात है। उन्होंने देखा कि प्रसव काल के दौरान कनखजूरा अपने पिछले पैरों से कीचड की परत ढोता है। वह कीचड़ सूखकर एक 'भारी जूते' का निर्माण करता है, जो परभक्षी से अंडों को सुरक्षित रखने में उपयोगी होता है। जब कीचड़ धुल जाता है तब वह कीट तब तक अपने पिछले पैरों से कीचड़ धोता रहता है जब तक एक नया जूता न बन जाये। एक बार जब अंडे से बच्चा बाहर निकल जाता है (सेने की प्रक्रिया पूरी हो जाती है) तब व्यवहार की यह प्रकृति अपने आप गायब हो जाती है। यह दुर्लभ निष्कर्ष पुनः एक लोकप्रिय बांग्ला पत्रिका में प्रकाशित हुआ और इसीलिए यह अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक समुदाय तक कभी पहुंच नहीं पाया।

सर जे.सी. बोस के निधन के बाद डी.एम. बोस 'बोस इंस्टीट्यूट' के भौतिक विज्ञानी निदेशक बने और गोपाल चंद्र भट्टाचार्य के लिए अनुसंधान का एक नया रास्ता खुला। उन्होंने चींटियों ओर बैंगचियों पर काम करना प्रारंभ किया तथा उन पर प्रतिजैविकों (एंटीबायोटिक्स) के प्रभाव का अवलोकन किया। ज्ञातव्य है कि बैंगचियां एक विशेष अवधि, जो सामान्यतः कुछ दिनों की होती है, के बाद 'कायांतरण' की प्रक्रिया द्वारा मेढ़क में परिवर्तित हो जाती हैं। गोपाल चंद्र ने यह खोज की कि पेनसिलिन का प्रशासन (प्रबंधन) कायांतरण पर रोक लगाता है। उन्होंने यह दिखाया कि पेनसिलिन बैंगचियों में मौजूद कुछ जीवाणुओं को समाप्त या निषेध कर देता है और वे मेढ़कों में विकसित नहीं होते। जीवाणु के बारे में यह सामान्य विचार कि वे हमेशा रोगजनक अर्थात् रोग पैदा करने वाले होते हैं, गलत सिद्ध हुआ। गोपाल चंद्र ने सैलोजेनिक अर्थात् स्वास्थ्य प्रदान करने वाले जीवाणुओं के अस्तित्व को स्थापित किया। यह महत्वपूर्ण अध्ययन बाद में उनके एक सहयोगी द्वारा कोलकाता आधारित एक पत्रिका 'साइंस एंड कल्चर' में प्रकाशित करवाया गया, जिसका भी प्रायः कोई अंतर्राष्ट्रीय वितरण नहीं था।

गोपाल चंद्र पांच दशकों से भी अधिक समय तक एक क्षेत्रीय अनुसंधानकर्ता रहे। अंग्रेजी पत्रिकाओं, जिनमें से दो अमेरिका की 'साइंटिफिक मंथली' ओर 'नेचुरल हिस्ट्री मैगजीन' शामिल थीं, में उनके 22 मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन के बावजूद वे भारतीय वैज्ञानिकों के बीच भी प्रायः अज्ञात ही रहे क्योंकि उन्होंने लोकप्रिय भाषा में ही लिखने पर ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने 800 से भी अधिक लोकप्रिय विज्ञान आलेख लिखे, जिनमें से अधिकांश उनके अवलोकन पर आधारित थे। वर्ष 1975 में उनकी पुस्तक 'इंसेक्ट्स ऑफ बंगाल' के लिए उनको बांग्ला लेखन का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'रवीन्द्र अवार्ड' प्रदान किया गया।

गोपाल चंद्र ने औपचारिक शिक्षा ग्रहण नहीं की थी और यही कारण है कि उनके अधिकांश सहकर्मी उनको एक वैज्ञानिक के रूप में स्वीकार नहीं करते थे। 1977 में इस लेखक ने बंगाल के वरिष्ठ वैज्ञानिकों के साथ किए गये साक्षात्कार पर आधारित रेडियो–रूपकों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की थी। गत वर्षों के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जे.एन. मुखर्जी ने यह जानकर अपना साक्षात्कार देने से इंकार कर दिया कि गोपाल चंद्र भट्टाचार्य को वैज्ञानिकों के पैनल में शामिल किया गया हैं। उन्होंने सतही तौर पर यह टिप्पणी की कि गोपाल चंद्र को ज्यादा से ज्यादा एक लोकप्रिय विज्ञान लेखक कहा जा सकता है, लेकिन उनको एक वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता क्योंकि वे विज्ञान पढ़ने के लिए कभी कॉलेज नहीं गये। गोपाल चंद्र अपने समकालीन वैज्ञानिकों के इस रवैये के बारे में जानते थे और इस बात से काफी दुःखी होते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय को धन्यवाद कि उसने 21 जनवरी, 1981 को डी.एससी. की मानद डिग्री प्रदान की और वह भी उनकी मृत्यु के तीन महीने (से भी कम) पहले।

*डा. अमित चक्रवर्ती पहले आकाशवाणी एवं दूरदर्शन में थे। उन्हें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी लोकप्रियकरण के लिए राविप्रौसंप का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिल चुका है। सम्प्रति वह विज्ञान प्रसार के फेलो हैं।

•••